

काल्य
में
रहस्यवाद

संग्रहणीय शोध ग्रन्थ

- १ मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य
डा० गिवसहाय पाठक
मू० १८००
- २ आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि
डा० वृष्णलाल गर्मा
मू० १५००
- ३ छायावाद काव्य तथा दर्शन
डा० हरनारायण सिंह
मू० १५००
- ४ प्रगतिवादी समीक्षा
श्री रामप्रभात निवृत्ती
मू० १०००
- ५ प्रसाद की दार्शनिक चेतना
डा० चक्रवर्ती
मू० २०००
- ६ सत साहित्य
डा० प्रमनारायण गुल्करी
मू० १८००
- ७ हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया
डा० परमानन्द श्रीवास्तव
मू० १२५०
- ८ आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा
डा० रामकुमार सिंह
मू० २०००
- ९ मूर का काव्य बंधन
डा० मुनीराम गर्मा
मू० १२५०
- १० काव्य में रहस्यवाद
डा० बच्चूलाल अवस्थी
मू० १२५०

काव्य में रहस्यवाद

डॉ० वच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान'

आचार्य एम० ए० पी०-एच० डी०



श्रीश्याम

रामबाग, कानपुर

अन्थम

- मूल्य
बारह रुपए पचास पैसे

- प्रकाशक
धर्म रामबाग कानपुर
- प्रकाशनकाल
अक्टूबर, १९६५
- मुद्रक
मानक प्रिन्टर्स मानदबाग
कानपुर-१

पितामह !

तुम तो मेरी जड़ता-रूपी व्याधि दूर कर
तथा स्वयं तीर्थ बन कर अपना
'वृक्षनाथ' नाम सायक कर गये,

मैं तम्हारे द्वारा पाये हुए लालन के अनणीभाव का बचकाना
प्रयास ही तो कर सकता हूँ ।

वैष्णव शिरोमणे !

लो रामचरित मानस और विनयपत्रिका द्वारा
आरम्भिक शिक्षा देने का स्वकृत प्रतिफल

जो बदाचित्त इस प्रय के रूप में
तुम्हारी आत्मा को, जिससे अभिन्न होने का
मुझे गौरव प्राप्त है, नाशित दे ।
मैं दो अश्व बिन्दुओं के अतिरिक्त
पूणकाम को और क्या दूँ ?

अनुक्रमणी

भूमिका	६-१०
अपनी बात	११-१६
१—प्रस्तावना	१७-४६
विषय प्रवेश	७
रहस्यशाब्दाथ	१८
रहस्य की भावानुभूति	२०
रहस्यभावना	२६
रहस्यभाव की भावना बनाम रहस्यभावना	२९
रहस्यवाद गल का अर्थ	३०
मिस्टिसिज्म और रहस्यवाद	३२
रहस्यवाद विषयक अमत्य और भ्रान्त धारणायें	३५
रहस्यवाद परम्परागत का धारा का नया नाम	४५
२—रहस्यवाद का दार्शनिक पक्ष	४७-९१
अध्यात्मविद्या और रहस्य	४७
रहस्य और दर्शन	५०
दर्शन में से रहस्य के वास्तविक भेद	५२
जावन दर्शन में रहस्यभावना का महत्त्व	५९
रहस्य और जिज्ञासा	६१
रहस्य के सिद्ध साध्यपक्ष	६३
साध्यपक्ष की का योपयोगिता	६५
रहस्य के विविध धरातल	६६
अरविन्द दर्शन	८३
निष्कर्ष	९१
३—रहस्य का काव्यपक्ष विवेचनात्मक अध्ययन (१)	९२-१२२
दर्शन और काव्य	९२
रहस्यद्रष्टा के भेद साधकमात्र साधककवि कविमात्र	९५
रहस्यकाव्य का अधिष्ठान तत्त्व	९७

दाशनिक तथा काव्यगत रहस्य में अन्तर	१००
रहस्यात्मक सौन्दर्यबोध	१०२
सौन्दर्यानुभूति के विविध धरातर और रहस्यवाद	१०५
रहस्यात्मक आत्मबोध	१११
स्वप्ररित तथा परप्ररित रहस्यकवि	१११
विविध रहस्यात्मक अभिव्यक्तियाँ	११२
कवि रसिक और रहस्य	११४
रहस्यवादी साहित्य समीक्षा	११६
छद्मरहस्य या रहस्याभास	११८
निष्कर्ष	१२२

४—रहस्य का काव्यपक्ष शास्त्रीय विवेचन (२)

१२३-१८४

रहस्यवादी काव्य की परिभाषा और आत्मा	१२३
रहस्यकाव्य में भाव विचार और कल्पनातत्त्व	१३२
रहस्यकाव्य की रचना प्रक्रिया	१३५
सामान्यकाव्य और रहस्यकाव्य	१३८
बन्धोक्ति और रहस्यकाव्य	१४०
ध्वनि और रहस्य	१४३
रस ध्वनि और रहस्य	१५७
रस और रहस्य	१५८
भक्ति स और रहस्य	१५९
रहस्यभावना और रसन व्यापार	१६६
रहस्यतत्त्व का साधारणीकरण	१६७
रहस्यकाव्य के प्रकार	१६७
क्या रहस्यवाद शैली है ?	१७१
रहस्यवादी प्रबंध काव्या का रूपक तत्त्व एक समीक्षा	१७१
रहस्यकाव्य की अन्कार योजना	१७६
प्राकृतिक रहस्यवाद	१७९
निष्कर्ष काव्य का रहस्य आन्तरिक व्यक्ति सिद्ध मात्र नहीं	१८३

५—रहस्यवाद का ऐतिहासिक विश्लेषण १८५-२१६

ऐतिहासिक विश्लेषण	१८५
प्रागैतिहासिक काल	१८६

ऐतिहासिक काल	
मध्यकाल	१९३
आधुनिक काल	२०३
६--रहस्यकाव्यो का प्रतीक योजना	२१७-२३७
प्रतीक क्या है ?	२१७
प्रतीकयोजना के कारण	२२२
प्रतीको का सांस्कृतिक (तथा वयक्तिक) आधार	२२५
प्रतीकनिर्वाह	२२७
स्वप्न और प्रतीक	२२८
प्रतीको का अथविकास	२३२
प्रतीको का अभिनवीकरण	२३४
७--रहस्यवाद का तुलनात्मक विवेचन	२३८-२७६
सापेक्षता और रहस्य	२३८
आध्यात्मिक और रहस्यवादी कविता	२४१
रहस्यवाद और छायावाद	२४५
रहस्यवाद और अभि यञ्जनावाद	२४८
कलावाद और रहस्यवाद	२५१
भक्तिकाव्य और रहस्यकाव्य	२५३
रहस्य और शृङ्गारी कवि	२५४
पलायनवाद और रहस्यवाद	२५५
रहस्यवाद और मानवतावाद	२५७
रहस्यवाद और नवमानववाद	२५८
सर्वोदय अथवा सवमक्तिवाद और रहस्यवाद	२५०
अन्तश्चेतना और रहस्यवाद	२६३
त्रिदिव्यनिटी और रहस्यवाद	२६६
अस्तित्ववाद और रहस्यवाद	२७१
निष्कथ	२७५
८--उपसहार	२७७-२९६
काव्य म लालक, दर्शन, रस और रहस्य	२७७
परिगिष्ट	२९७-३००
ग्रन्थसूची	२९७

भूमिका

यद्यपि यूरोपीय विद्वानो न लिखा है कि मिस्टिसिज्म अच्छा गान नहीं है इसके समकक्षी भारतीय गान इससे कहीं अधिक अच्छे हैं¹ तथापि हिन्दी क लेखको ने इसी को अपनाया। 'मिस्टिसिज्म का रहस्यवाद अनुवाद भ्रातिकारक है। भारतीय वाङ्मय में रहस्य गुह्य गूँ उपनिषद् इत्यादि का मिलते हैं किन्तु रहस्यवाद गान कहीं नहीं मिलता। जो हा हिन्दी का तो अब यह प्रचलित सिक्का है।

आचार्य शङ्कर ने सत्ता के तीन स्तर मान हैं—यावहारिक, प्रातिभासिक और पारमाधिक। तीनों की अनुभूति के स्तर अलग अलग हैं। यावहारिक और प्रातिभासिक सत्य का अनुभूति तो जनसाधारण को है किन्तु पारमाधिक सत्य की अनुभूति किसी बिरले साधक का ही हाती है। बौद्ध द्गान में भी तीन प्रकार के सत्य और उसकी अनुभूति का उल्लेख है—परिकल्पित सत्य परतत्र सत्य और परिनिष्पन्न सत्य। नागाजुन ने परिकल्पित और परतत्र सत्य को मिला कर भवति सत्य और परिनिष्पन्न सत्य का परमाध कहा है।

प्लोताइनस ने ज्ञान के तीन स्तर मान हैं—(१) सायन्स अर्थात् इन्द्रियज य ज्ञान (२) आपानियन—सुन कर या पुस्तकों द्वारा प्राप्त ज्ञान (३) इत्सूमिनगन—प्रबोध या वाधिजय ज्ञान। इसी का अरबी में अनुवाद हुआ—(१) एनुल्यकीन (२) इत्मुल्यकीन (३) हबकुल्यकीन और सूफिया

1 W T stou द्वारा लिखित Mysticism and Philosophy पृ० १५

ने इन गणों का प्रचर प्रयोग किया । परमाथ के लिये व हक गण का प्रयोग करते हैं और पारमाथिक ज्ञान के लिए हककूलयकीन' । सवतिसत्य—साय स और आविनिपन—एनुलयकीन और इत्मुलयकीन तो इन्द्रिय और साधारण बुद्धि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु परमाथ ज्ञान—इत्पूमिनेशन—हककुलयकीन तो साधारण बुद्धि से परे है ।

'अबल गा आस्ताँ स दूर नहीं ।

उमकी तबदार म हजूर नहीं । (इक्बाल)

परमाथ की हक को अपरोक्षानुभूति होती है । अपरोक्षानुभूति इतनी व्यक्तिगत होती है, कि उसको छाया द्वारा दूसरों को यक्त नहीं किया जा सकता । अकथनीयता अवगनीयता सभी प्रकार की अपरोक्षानुभूति के लिए सत्य है, किन्तु परमाथ की अपरोक्षानुभूति के लिए तो यह और अधिक मान्य म सत्य है, क्योंकि शब्द दग और काल के राज्य व हैं और परमाथ दशकाल तीत है, जिस चित्त या बुद्धि से हम वणन करना चाहते हैं वह भगवान बुद्ध के गब्दा मे सम्कृत है और निर्वाणपद असस्कृत है, संस्कृत से असस्कृत का कसे वणन करें ? इमालिए उपनिषद न कहा है यतो वाचो निवत ते अप्राप्य मनसो सह' और कबीर न कहा है जाकर नाम इक् हुवा रे नाई । यह सब होते हुए भी, गोस्वामी ललसीदास के शब्दों मे 'तदपि वह बिनु रहा न कोई । प्रत्येक साधक कुछ न कुछ उसके विषय मे कहता ही है । समस्या यह खडा हाती है कि जब परमाथ की अनुभूति अकथनीय है तो फिर कोई उसका वचन कसे करता है । इसके हल के लिए कुछ विद्वानों न का यगत सत्य (poetic truth) की अवधारणा प्रस्तुत की है । यह का 'यगतसत्य' क्या है, इसकी आलाचना इस छाटी-सी भूमिका मे संभव नहीं है । संक्षेप मे यही कह सकते हैं कि प्राध्यापक फिलिप हीलराइट ने अपने The Burning fountain मे दो प्रकार की भाषा बतलाई है—expressive or depth language व्यञ्जनात्मक या निगूणायवीधक भाषा और literal language अभिधामूलक भाषा । उनका कहना है, काव्य, साधक और पुराण व्यञ्जनात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं और विज्ञान, इतिहास इत्यादि अभिधामूलक भाषा का प्रयोग करते हैं । इस पर विद्वानों ने बहुत विचार किया है । उनका कहना है कि काव्य इस प्रकार भाषा से—भाषाभिव्यञ्जना पदलालित्य छन्द ध्वनिमाधुर्य इत्यादि से सत्य को अधिक मधुर अवय्य बना देता है, किन्तु काव्यगत सत्य कोई भिन्न प्रकार का सत्य नहीं है । तो क्या परमाथ की अनुभूति की अकथनायता और फिर भी उसके वचन के सावण प्रयास की समस्या का कोई उत्तर नहीं है ?

हम ऊपर एक कठिनाई का सनेत क चुके हैं कि परमाथ की अनभूति देगकालातीत है भापा देगकाल की सीमा मे आवद्ध है, परमाथ निविनेप अखण्डता का अनुभूति है हमारी भापा विनेप और खण्डात्मक वक्ति स जकडी हुई है । इसके साथ ही साथ एक कठिनाई और है । परमाथ की अनुभूति म अकाल काल असीम-ससीम निर्वाण-ससार अनन्त सात द्वय अद्वय सत असत भाव-अभाव शून्य तूण इत्यादि विरोधो का परिहार समवय और उपगम हो जाता है । नागाजुन के शब्दा मे वह चतकोटि विनिमुक्त है । यही कारण है कि बौद्धयोगियो ने उस भावाभाव समानता कहा है और परमाथ की उहोन तथता की सना दी है । जब साधक बुद्धि के धरातल पर उतरता है तब य विराय मह फाड कर खड हो जाते हैं और जब वह अपनी अनभूति की स्मति को बौद्धिक स्तर पर वणन करना चाहता है तब एक विचित्र असमथता का अनुभव करता है । साथ ही जिस सत्य क अनुपम सौदय का उसने देखा है उसके वणन की विवगता का भी अनुभव करता है । इस कठिनाई को दूर करन क लिए उसे विराधाभास यञ्जना और प्रतीकात्मक भापा की गरण गनी पडती है । कोई अय गति नही दूसरा कोई उपाय नही । काय ही एक ऐसा माध्यम है जिसम उसको उपयुक्त उपायो के अवलम्बन का अवकाश मिलता है । उसके हृदय का स्पन्दन छ द म प्रवाहित हो उठता है उसकी भात्मिक अनुभूति यञ्जना ध्वनि और प्रतीक म फट निकलती है उसकी अखण्डता के बोध की अभि यक्ति की पीडा विरोधाभास का रूप ग्रहण कर लेती है । इन उपायो क द्वारा वह हम अनन्त के छोर तक पहुचा कर लण भर क लिए उसकी एक झांकी दे दता है । वह विरोधाभास का प्रयोग लागा का चक्ति या आतद्धित करन के लिए नही करता जसा कि कुछ लोगा न भ्रमवश समय रक्खा है । वस्तुत परिस्थिति उस विवश करती है । यही कारण है कि वे उपनिषद और चर्यापद म सधाभावा (सध्या नही) सन्तो का वाणी म उलटवांसी और त्रिश्चन मिष्टिन में पराडांस का वहुल प्रयोग मिलना है ।

साधकों ने स्वानुभूति क आधार पर परमाथ के विषय म कविता की है कुछ सफ्त कवियो न सहानुभूति क आधार पर परमाथ के विषय म कविता लिखी है । मरा तु छ बुद्धि म दोना का एक पक्ति म विठाना ठीक नहीं है ।

यह बात नहीं है कि कवल साधक का ही परमाथ की अनुभूति हाती है । औरा को भी—और निस्सन्देह किमा कवि का भी—पूव जम की साधना

के सत्कार से अथवा प्रभु के अनुग्रह से ऐसी अनुभूति हो सकती है। यदि इस प्रकार की अनुभूति उसे हुई है और उसकी अभिव्यक्ति वह काय द्वारा करता है, तो निस्सन्देह वह भी उसी कोटि का कवि है जिस कोटि का कवि साधक है। किन्तु साक्षात् अनुभूति के आधार पर रचित कविता और किसी साधक के लेख या कविता से प्रेरित या प्रभावित हाकर कल्पना और भावावेश के आधार पर रचित कविता में अंतर रहेगा ही। इसका निणय कस ही किसी को वास्तविक अनुभूति हुई है या नहीं ?

इसका निणय स्वयं उसका जीवन कर देगा। अनुभूति के अनंतर उसका जीवन रूपांतरित हो जायगा। एक साधक ने कहा है "No one can see God and yet live —इश्वर का देखन के बाद कोई जिंदा नहीं बच सकता। अर्थात् वह फिर वही नहीं रह जायगा, उसका आपा समाप्त हो जायगा। आग का जीवन पूर्ववत् रागद्वेष से प्रेरित न हागा, वह सवत्र साम्य देखेगा और ब्राह्मी स्थिति में रहेगा।

जो ही उस अनुभूति का वणन जसा एक कवि कर सकता है, वसा दूसरा कोई नहीं कर सकता। जावन की साधारण अनुभूतियां के लिए भी यही बात सत्य है। उद्ग के किसी कवि ने सच कहा है—

दिल के किस्स कहाँ नहीं होते।
हौं, व सब स बर्षा नहीं हात।

आजकल हिंदी में 'रहस्यवाद' पर पर्याप्त चर्चा चल रही है। डाक्टर अब्दुल अकबरी ने काव्य में रहस्यवाद पर विद्वत्तापूर्ण विचार किया है। मैंने उन्हें एक पत्र में लिखा था कि 'मिस्टिसिज्म' का रहस्यवाद भ्रष्ट अनवाद है। 'मिस्टिसिज्म' *mystes* से 'युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है दीक्षा प्राप्त। गोपनीयता या रहस्य तो इसका औपचारिक या गौण अर्थ है। डाक्टर अब्दुल अकबरी ने इसका उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। इसलिए इसकी विस्तृत आलोचना यहाँ करना ठीक न हागा। हिन्दी में रहस्यवाद एक रुढ़ शब्द सा बन गया है जो कि एक विगिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है।

डाक्टर अब्दुल अकबरी संस्कृत के एम० ए० और आचार्य हैं हिंदी के एम० ए० और डाक्टर हैं। काय और दगन दोनों का उनका बहुत अच्छा अध्ययन है। अतः वह सब प्रकार से इस विषय पर लिखने के अधिकारी हैं। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में रहस्यवाद के विविध पक्षों पर विचार किया है।

रहस्य का शत्रु रहस्य और दर्शन का सम्बन्ध रहस्यवाय म भाव और ध्वनि इस प्रकार के काव्य का इतिहास रहस्यकाव्य मे प्रतीक का स्थान रहस्यवाद और छायावाद का अन्तर—त्यादि बहुत-स जात य विषयो का बहोने समीक्षात्मक गवेषणापूण अध्ययन प्रस्तुत किया है । भूमिका अक्षक ता नाटक के सूत्रधार के समान है । नाटक क विषय का सकत कर सूत्रधार का रगमन्ध से हट जाना चाहिए नहीं तो वह नाटककार क साथ अयाय करेगा । मैने भी इस पुस्तक के बध्य विषय का सबतमात्र कर दिया है । पाठक स्वय देखेंगे कि इसम क्या है । इतना मुझ विश्वास है कि वे इसक अध्ययन से अवश्य लाभान्वित होंगे ।

—जयदेवसिंह

अपनी बात

भारत आध्यात्मिक देश है। यहाँ का नगराज कूस्य अचल गिहरी है जिससे जाह्नवी की पावन भाव धारा गारवत प्रवाह प्राप्त करती है। यहाँ की भाषा का महावरे आध्यात्मिक है। यहाँ भगवान की दया से सब काम हाते हैं। यहाँ धन को माया कहा जाता है। यहाँ दास प्रया न होन पर भी मान का परम पुण्याय माना गया है। यहाँ जा जसा करता है वसा भरता है। यहाँ की रमाई म रत का प्रयाग हाता है और यञ्जन बनत है जो उम रम की व्यञ्जना करत है जो कि आत्मरूप है। यहाँ खाना नहा खाया जाना प्रसात् पाया जाता है। यहाँ कामनाश्रीय गल् भी दानिक है भौतिक नामकरण मात्र नही—यत्र प्रयाग मिद्धि भाव प्राप्ति, आसन, मुद्रा मयून रति मुरत आदि मभी गत् उठा लिय जाय तो उनका पहले अध्यात्मविद्या म प्रयोग मिग्गा जहाँ स यभिवरित (Corrupt) होकर छाय गय हैं। यहाँ कवि मनीषी ही नही परिभू और स्वयम्भू है। यहाँ का ग द परा विद्या का रूप है ब्रह्म है और यत्रा म अक्षरा की याजना आध्यात्मिक 'रहस्य की यञ्जक रही है। यहाँ जावन प्राणधारण है जिसका धारणकर्ता जीव है पर व्यापक होने से वह आत्मा है। यहाँ मरण का अर्थ प्राणत्याग भर है और यहाँ 'मत्यु मिटटी का मटटी म मिलना भर है। यहाँ देहान्त होता है आत्मा का अन्त नही। यहाँ कबडही म प्राणायाम सिखाया जाता है। यहाँ हमारी वस्तु हमारा (मम सम्बद्ध) ता होती पर हमारे पास रहा करती है, हम उस रखते नो (आइ हैव का मुहावरा नहा चलता)। यहाँ किसी वस्तु से मुक्त हाकर निद्रा हा लत है। यहाँ पुत्र आत्मा हाता है और पत्नी जाया हाती है क्याकि उसी से पुरुष पुत्र रूप म जम गता है। यहाँ का प्रेम आल म्वन को तपित्ति दन का अर्थ दता है—प्रम करन वाला लाभायक सब नही करता। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार हम स्वाधीन या स्वतंत्र हैं इतिषेण्डण नही। यहाँ के ऊखल और मुगल भी परा लीला क प्रतीक हैं। यहाँ गर्भाधान एक सस्वार है जिसम नर-नारी गारवत प्रकृति-पुरुष की लीला का विनोद भर करते हैं। यहाँ का आकाश सब आर दीप्त रहने से कहाता है।



ऐसी दशा में पश्चिम से उधार ले लेकर जब हमने विचारों से अपने को भरना चाहा तो यहाँ का प्रत्येक शब्द ऐसे नये अर्थ से विद्रोह करने लगा। जिस भारत में 'ग' का सम्यक् प्रयोग स्वगदायक माना जाता था वहाँ अब बाह्य सादृश्य के आधार पर सूर्य और आत्मा एक हो जाते हैं। यहाँ का मनीषी अर्थ जो कम जानता हुआ भी अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों में साक्षरता और फिर संस्कृत का आँचल फाड़ कर उसमें उस अर्थ को लपेट कर कृतकृत्य हो जाता है। व्याकरण दर्शन और काव्य की दृष्टि से जो भारत विश्व में एक रहा है उसमें ये ही विषय अंग्रेजी से अनूदित होकर गौरव पाते हैं। काव्य शास्त्र का हमारा अब कोई प्रतिमान पश्चिम की कसौटी पर खरा उतरे बिना मान्य नहीं होता। स्पष्ट है कि हम अपने रत्नों से ऊब गए हैं अतः उन्हें फेंक कर बाहर का काच घर में भरने पर तुले हैं—हमारा तात्पर्य नवीन अवधारणाओं के विरोध में नहीं है पर भारतीय सौंदर्यशास्त्र तक मूलग्रन्थों में न पड़ा जाकर अंग्रेजी से पढ़ा जाय तो संस्कृत के विद्यार्थी और हिन्दी के स्वाभिमानों अध्येता के लिए अमप की बात ही है।

इस निश्चय की रचनात्मक रूप तब मिला जब मैं श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्र की समीक्षा-विषयक साहित्य पढ़ा। वे भारतीय काव्यशास्त्र द्वारा काव्य के समीक्षक के रूप में मुझे और मैं इधर प्रायः पाँच वर्षों में उनकी ओर निरन्तर आकृष्ट होता गया हूँ। उन्होंने मेरे अमप की केवल निषेधक हानि से बचा लिया और विधि की दिशा में मोड़ा। मैंने सीखा कि पश्चिमीय समीक्षा सिद्धान्त भी भारतीय काव्यशास्त्र की सीमा में पड़ और परखे जा सकते हैं। यवन और रोम की संस्कृतियों के पतन के साथ वहाँ की विचार परम्परा टूटती रही है जिस राजनीति के टाका से जोड़ा गया है और क्रिचियनिटी से चमकाया गया है। वह चमक वहाँ के विचारक पर से जानही सकती चाहे वह अनीवरवादी ही क्यों न हो। फिर भी आज विश्वकव्य का विवेचन के घरातल पर सन्देश देने वाला भारत सब कहीं से सब कुछ अपने प्रकाश में देखने भर का स्वतन्त्र है तथा उमम पूण परम्परागत शक्ति विद्यमान है।

डा० मिश्र की यह स्थापना कि सत्य की अपने पूण सौंदर्य के साथ अभिव्यक्ति काव्य है' हम भारतीय काव्यशास्त्र का चिरन्तन सिद्धान्त प्रत्यक्ष करा देती है। पश्चिम का अर्थ सौभाग्य नहीं कहा जायगा कि वहाँ काव्यान्तर्द को आदमान् रूप नहीं माना गया—कम-से-कम रस सिद्धान्त से पादचात्य

कला वञ्चित है अतएव उस अपेक्षित महत्त्व नहीं मिल पाता । वहाँ यह अधिक देखा जाता है कि कवि कित परिस्थितियाँ का चपट म वसा रचना करता है पर आज यह नहीं देखा जाना कि वह मानवमक्ति का सत्प्रवृत्त भी करता है—मेरा तात्पर्य रसानुभूतिरूप भावमुक्ति से है जिसके अभ्यास से ही हम मानव चेतना का एक रूप में अनुभूतिगम्य बनाकर एककालातीत मानवक्य की प्रतिष्ठा कर सकते हैं ।

भारत का भोगी अपने ही लिए साधन नहीं करता, वह तो कवि की सौंदर्य-सामग्री देकर जन जन तक साधनालम्ब आनन्द विखेर देता है जिस पात्रानुसार ही ग्रहण किया जाता है । ऐसी स्थिति में यहाँ दान और काव्य का मूल पाठक्य अव्यवहाय रहा है— टकनीक का अन्तर ही माय है । ऐसी इस मायता के विरुद्ध जब कुछ मित्रों ने मुख विचलित करने वाली अपनी धारणायें पुर स्थापित की तब मेरे समक्ष उपेक्षा कर देने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया । अरविन्द के विषय में यह धारणा कि मानव जाति का मुक्ति के लिए किसी चेट्टा की आश्रयता नहीं मैं अनुगत न कर सका क्योंकि अरविन्द का समस्त जीवन विश्वमक्ति के प्रयत्न से पूरा रहा है तथा उनका दिव्य जीवन यागी की सदा सप्रयत्न रहन का सद्देग देता है कि जिस मानता की मुक्ति में आन गाली बाधायें दूर होती रहें ।

श्रीमान डा० जयदासिंह जी की मुझ पर अहैतुकी अनुकम्पा रही है । इसलिए जब मैं रहस्यवाद—विषयक अपना एक निबंध भेज कर इस ग्रन्थ के लिए निलेपो की प्रायना की तो उन्होंने साक्षात् तथा पत्रों द्वारा भरे दृष्टि कोण का सगाधन किया और अध्येतव्य सामग्री से परिचित कराया । प्रायः सालह वर्षों से दुर्लभ स्नहपात्र होने से मैं उनको विगलता तथा उत्तरता में बड़ा लाभ उठाया है । रहस्य-सम्बन्धी मेरी धारणा कितनी उनसे मिली है और कितनी स्वाधीन शास्त्रों से, आज यह भी विवक्ति करना मेरे लिए कठिन है । समग्र ग्रन्थ का स्वतः पढ़कर उन्होंने आशीर्वाचों से अभिषिक्त कर दिया है अतः मैं निश्चिन्त हूँ । मैं अपनी सीमाओं से परिचित हूँ अतः जब मैं इसकी भूमिका लिखने की प्रायना की तो उन्होंने स्वीकृत कर इस पुस्तक को धर्म सध्य सामग्री प्रदान की है जिसके लिए मैं ही ऋणी नहीं इसके पाठक भी आभारी रहेंगे । सन्तो पर आपका दृष्टिकोण समग्रता एवं स्पष्टता में अद्वितीय है अतः यह काम आपके ही चूते का था ।

इस पुस्तक के प्रणयन के लिए श्रीमान डा० भगीरथ मिश्र ने मुझे

ऐसी दगा म पश्चिम स उधार ले लेकर जब हमने विचारो से अपने को भरना चाहा तो यहा का प्रत्यक गान् ऐसे नये अथ से विद्रोह करने लगा । जिम भारत म गान् का सम्यक प्रयोग स्वगदायक माना जाता था वहा अब बाह्य सादश्य के आधार पर सल्फ और आत्मा एक हो जात हैं । यहाँ का मनीषी अग्र जी कम जानता हुआ भी अग्रजी के पारिभाषिक गान्दो म साधता और फिर संस्कृत का आंचल फाड कर उसमे उस अथ को लपेट कर कृतकृत्य हो गेता है । याकरण दर्शन और काव्य की दष्टि मे जो भारत विश्व मे एक रहा है उसके ये ही विषय अग्रजी से अनदित होकर गौरव पात हैं । काव्य शास्त्र का हमारा अब कोइ प्रतिमान पश्चिम की कसौटी पर खरा उतरे बिना माय नही होता । स्पष्ट है कि हम अपने रत्नों स ऊब गये हैं अत उहे फेंक कर बाहर का काच घर म भरने पर तुले हैं—हमारा तात्पर्य नवीन अवधारणाओ के विराध म नहीं है पर भारतीय सौंदर्य शास्त्र तक मूलग्रन्थाम न पढा जाकर अग्रजी से पढा जाय तो संस्कृत के विद्यार्थी और हिन्दी के स्वाभिमानी अध्ययता के लिए अमय की बात ही है ।

इस निश्चय का रचनात्मक रूप तब मिला जब मैंन थॉड्ये डा० भगीरथ मिश्र की समीक्षा—विषयक साहित्य पत्ता । वे भारतीय काव्यशास्त्र द्वारा काव्य के समीक्षक के रूप म मुक्त दिखे और मैं इधर प्राय पाँच वर्षों म उनकी आर निरन्तर आकष्ट होता गया हू । उ होने मरे अमय को केवल निषेधक होने से बचा लिया और विधि की निशा म मोडा । मैंन सोखा कि पश्चिमीय समीक्षा सिद्धांत भी भारतीय काव्यशास्त्र की सीमा म पढ ओर परखे जा सकते हैं । यवन और रोम की संस्कृतियों क पतन के साथ वहाँ की विचार परम्परा टूटती रही है जिस राजनीति के टाँकों स जोडा गया है और त्रिदिशयनिटी स चमकाया गया है । वह चमक वहाँ क विचारक पर से जानही सकती चाहे वह अनी वरवादी ही क्यों न ह्य । फिर भी आज विश्वकय का विश्वधेनना के घरातल पर सन्दर्ग देन वाला भारत सब कही स सब कुछ अपने प्रकाश म देखन भर को स्वतंत्र है तथा उसम पूण परम्परागत शक्ति विद्यमान है ।

डा० मिश्र की यह स्थापना कि 'सत्य की अपने पूण सौंदर्य के साथ अभिव्यक्ति काव्य है हम भारतीय काव्यशास्त्र का चिरंतन सिद्धांत प्रत्यक्ष करा देती है । पश्चिम का इमे सीमाय नही कहा जायगा कि वहाँ काव्यान्वय को आत्मानन्द रूप नहा माना गया—कम से कम रस सिद्धांत से पाश्चात्य

कला वञ्चित है अतएव उस अपक्षित महत्त्व नहीं मिल पाता। वहाँ यह अधिक देखा जाता है कि कवि किन परिस्थितियों की चपेट में बसी रचना करता है पर आज यह नशा दखा जाता कि वह मानवमक्ति का सदा वहन भी करता है—मेरा तात्पर्य रसानुभूतिरूप भावमुक्ति से है जिसके अग्रास से ही हम मानव चेतना को एक रूप में अनभूतिगम्य बनाकर अकालातीत मानवैक्य की प्रतिष्ठा कर सकत हैं।

भारत का यात्रा अपने ही लिए साधन नहीं करता, वह तो कवि का सौंदर्य सामग्री देकर जन जन तक साधनालम्ब आनन्द बिखेर देता है जिस पात्रानुसार ही ग्रहण किया जाता है। ऐसी स्थिति में यहाँ दशन और काव्य का मूल पाठक्य अन्वयण रहा है—टेकनीक का अन्त ही माय है। ऐसी इस मायता के विरुद्ध जब कुछ भिन्नो ने मुण विचलित करने वाली अपनी धारणाओं पुर स्थापित की तब मेरे समझ उपेक्षा कर देने के सिवा कोई चारा नहीं रह गया। अरविन्द के विषय में यह धारणा कि मानव जाति की मुक्ति के लिए किसी चेट्टा की आशयकता नहीं में अनुगत न कर सका क्योंकि अरविन्द का समस्त जीवन विश्वमुक्ति के प्रयत्न से पूण रहा है तथा उनका दिव्य जीवन यागी को सदा सप्रयत्न रहत का सदा दता है कि विश्व मानता का मुक्ति में आने वाली बाधाओं दूर होती रहें।

श्रीमान डा० जयदासिंह जी की मृत्यु पर अहैतुकी अनुकम्पा रही है। इसीलिए जब मैंने रहस्यवा—विषयक अपना एक निबंध भेज कर इस ग्रंथ के लिए निर्देश की प्रायना की तो उ होने सम्मान तथा पत्रों द्वारा मेरे दृष्टि कोण का साधन किया और अघ्यतव्य सामग्री से परिचित कराया। प्राय सोलह वर्षों से दुर्लभ स्नेहपात्र होने से मैंने उनकी विगालता तथा उदारता से बड़ा लाभ उठाया है। रहस्य सम्बन्धी मेरी धारणा किनो उनसे मिला है और कितना स्वाधीन शास्त्रो से, आज यह भी विविक्त करना मेरे लिए कठिन है। समग्र ग्रंथ को स्वतः पढ़कर उहाँन आशावांनो से अभिविक्त कर दिया है अत मैं निविचत हूँ। मैं अपनी सीमाओं से परिचित हूँ अत जब मैं इसकी भूमिका लिखने की प्रायना की तो उहाँने स्वीकृत कर उस पुस्तक को अघ्ये त य सामग्री प्रदान की है जिसके लिए मैं ही ऋणी नहीं, इसका पाठक भी आभारी रहूँगे। सन्ता पर आपका दृष्टिकोण समग्रता एवं स्पष्टता में अद्वितीय है अत यह काय आपके ही बूते का था।

इस पुस्तक के प्रणयन के लिए श्रीमान डा० नगीरय मिश्र ने मुझे

अध्यापक का उत्तरदायित्व गहन है। विद्यार्थी स्वयं भी अनुभूति-सम्पन्न नहीं होता अतः काव्यशास्त्रीय विज्ञान पर ही भरोसा रखकर उस समझाना पड़ता है और जहाँ तक समझ जाती है कोई रहस्य नहीं रह जाता और जो अनुभूति में आ जाय वह भी उस क्षण रहस्य नहीं होता, केवल तक न आ पाने से तथा अरसिकों द्वारा अवेद्य होने से ही कदाचित् निगूढ क अर्थ में रहस्य नाम साधक है^१—यों ग्रन्थ में 'युत्पत्ति' द्वारा इस पर विचार हुआ है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों से इस सद्भ को समाप्त करता हूँ—

In this first place there is no mystery in what I teach
What little I know I will tell you So far as I can reason it
out I will do so but as to what I do not know I will simply
tell you what the books say It is wrong to believe blindly You
must exercise your own reason and judgement you must practi-
ce and see whether these things happen or not Just as you
would take up any other science exactly in the same manner
you should take up this science for study There is neither my-
stery nor danger in it So far as it is true it ought to be pre-
ached in the public street in broad day light Any attempt to
mystify these things is productive of great danger

Raja yoga—P 16

रुखीमपुर सीरी

विजयवर्गमी २०२० वि०

बच्चूलाल अवस्थी ज्ञान



१ हिन्दी में Mystic और Mystery दोनों के लिए रहस्य ही आती है अतः यहाँ द्वितीय अर्थ में प्रयोग समझना चाहिए।

प्रस्तावना

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता ?
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता ।

विषय-प्रवेश

—प्रसाद^१

साहित्यालोचन के क्षेत्र में रहस्यवाद की अवतारणा हिन्दी समालोचना की विरोधता है और इस समय तक इस पर विविध प्रकार के विचारों का अच्छा धन्र तयार हो चुका है । अतः राष्ट्रीय रीति से इसका स्वरूप निर्धारण का प्रयत्न असामयिक न होगा । यह तो निश्चित ही है कि 'रहस्यवाद' नाम का एक काव्यधारा भाय हो चली है चाहे कोई उस काव्य में आत्मा की सत्त्वात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा^२ कह कर सुप्रतिष्ठित करना चाहे अथवा कविता की एक 'गूढा विधि' माने काय का सामान्य स्वरूप नहीं ।^३ यह अब निश्चित कहा जा सकता है कि कविता यदि जीवन से सम्पन्न है और जीवन में वहीं रहस्यात्मकता है तो कविता उस रहस्य से रहित ही ऐसा समझ नहीं यह दूसरी बात है कि उस रहस्य के ज्ञात-यश को हम रहस्य न मानें

१ कामायनी—भासा सग ।

२ जयशङ्कर प्रसाद—रहस्यवाद (भारतम्) ।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि—भाग २, पृ० ५० ।

और अज्ञाताग की जिज्ञासा को भावुकतामात्र कह कर तिरस्कृत कर देना चाहें पर जीवन क विविध स्तरों की निरन्तर खोज चल रही है जो विज्ञान के क्षत्र की वचारिक विभूति है और साहित्य जब उसी को भावात्मक रूप में प्रतीति गम्य बनाता है ता कोई कारण नहीं कि उस अकिञ्चित्कर कहकर उपेक्षित किया जाय । प्रस्तुत प्रबंध में इसी की विवेचना का प्रयत्न किया गया है ।

अपेक्षाकृत मुस्पष्ट एवं साङ्ग विवेचना के लिए सब प्रथम 'रहस्य शब्द' का अर्थ विचारणीय है ।

रहस्य शब्दाय

रहस्य शब्द के त्रिविध अर्थ—युत्पत्तिकृत यावहारिक तथा दाग निक—इस सदम में उपादेय है । 'युत्पत्ति की दृष्टि से यह शब्द 'रहस्य' शब्द से यत् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है जिसका विग्रहधाक्य होगा— रहसिभव रहस्यम अर्थात् 'रहस्य में होने वाले को रहस्य कहते हैं ।' अब रहस्य शब्द को ॐ ता बहु स्वतः कृन्त पद है जिसकी निष्पत्ति त्यागाय रह घातु स 'अमुन प्रत्यय' द्वारा हुई है । अत रहस्य में अन्य प्रमेयों का त्याग ही मुख्य अर्थ है जो एकमात्र प्रमेय को विधयरूप (Positive) देकर प्रस्तुत करता है । अर्थात्—प्रमेयांतरों के परित्याग द्वारा विधयासपूक्त मनोभूमि में हाने वाली प्रतीति अथवा प्रतीयमान सत्ता ही रहस्य का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है ।

व्यावहारिक अर्थ उक्त अर्थ से दूर नहीं है । लोक में रहस्य का अर्थ निगूढ लिया जाता है । 'निगूढ' वही होता है जिसके साथ अर्थ प्रतीयमान तत्त्व का योग न हो । ऐसे रहस्य में एक ही ज्ञाता एक ही जग और एक मात्र ज्ञानसाधन—मन की उपस्थिति रहा करती है । इसी त्रिपुटी का योग रहस्य प्रतीति कराता है । रहस्य का व्यावहारिक अर्थ 'एकान्त' लिया जाता है । एकान्त शब्द में बहुश्रीहि-समास है—एक अन्त यस्यस एकान्त । अर्थात् जिसका एक ही अन्त या उद्देश्य (end) ही वही एकान्त है । व्युत्पत्ति के मेल में देखें तो एक ही अर्थ के विधिपण (Positive side) को एकान्त शब्द प्रबट करता है तो उसी के निषेध पक्ष (Negative side) को रहस्य शब्द प्रबट करता है—दानों में तात्त्विक अन्तर नहीं है । रहस्य एकांत क बिना शून्य है

१ तत्र भव शिगाशिन्यो यत् (पाणिनि सूत्र ४ ३ ५३ ५४) ।

२ सर्वदात्म्यो मन् (उणाशिन्य-चनुय पाद) ।

निष्प्रयोजन है तो एकान्त रहस्य का बिना निराधार है। (यही एकान्त का मूल अर्थ है शेष अर्थ अर्वाचीन हैं जो इसी से निकल कर प्रयोगों में आए हैं)।

‘रहस्य का दार्शनिक एवं शास्त्रीय अर्थ मम होने के साथ साथ एक अत्यन्त उपात्त अर्थ—उपनिषद्—भी है। इसी लिए वेद रहस्य के अर्थ में वेदोपनिषद् का प्रयोग बल्कि साहित्य में मिलता है।^१ आचार्य आनन्दवदन ने ध्वनितत्व को काव्य का उपनिषद् बतलाया है।^२ सभी अर्थों में एकान्त लक्ष्यता अनुस्यूत है। इसीलिए काव्य का रहस्य रस है क्योंकि वह वेदान्तरक्षण शून्य^३ हाता है और अर्थ सब कुछ को तिराहित करता हुआ प्रकट होता है। यही कारण है कि रस को यागलक्ष्य रहस्यत्व की अपेक्षा भी उत्कृष्ट बताने की अतिशयोक्ति आचार्य भट्टनायक ने अपनाई है—वाणी धनु जिस रस दुग्ध को देती है उसके समान वह रस भी नहीं जिसे योगी दुहते हैं।^४

परन्तु भट्टनायक जसा पूर्व भीमासा मनीषी वह न देख सका कि यदि यागियों का आलम्बन ही रस का भी आलम्बन बनाकर लाया जाय तो रहस्यात्मकता काव्य में दुबन्द हो उठगी। वह आलम्बन और उसकी रसात्मक प्रतीति दोनों ही घटान्तर-क्षण शून्य होकर आनन्द रूप में परिणत होती है जसी कि ध्यामती महादेवी वर्मा की भावना है—

“आनम की दीपावल्या । पल भर का तुम बुझ जाना
करणामय को माता है तम क परदे में आना ।

स्पष्ट है कि आस्वादरूप रस की अपेक्षा रहस्यकाव्य में आस्वाद्यमान या रहस्यमान रहस्यालम्बन तत्त्व विरोध महत्व का हो जाता है और यही उसकी विशेषता है। इसे और भी विविकृत करने के लिए रहस्य की भावानुभूति की प्रणाली पर दृष्टिपात अपेक्षित है।

- १ एवावदोपनिषद्—तत्तिरीयापनिषद्—आचार्यानुशासनम् ।
- २ ध्यने स्वरूप सकल-सत्कवि-काव्योपनिषद्भूतम्—ध्वयालाक ११
- ३ आचार्य विन्वनाथ—साहित्यदण—रसनिरूपण ।
- ४ आचार्य मम्मट—काव्य प्रकाश—रसनिरूपण ।
- ५ वाग्धनुर्दुग्ध एन हि रस मद बालतप्पया ।
तन नास्य सम सत्याद् दुह्यत योयिभिस्तुय ॥

रहस्य की भावानुभूति

काय म उपयुक्त रहस्यत्व की भावात्मक अनुभूति होती है। इसके बिना उम काय नहीं बना जा सकता। अत रहस्य सत्ता को काव्य के मदम मे समझन के पूव रहस्य के भावात्मक स्वरूप जोर अनभूति पर विचार अपेक्षित है। इम विषय को प्रथम भाव अनभूति और रहस्यानभूति इन तीन खण्णो मे देखा जायगा। फिर रहस्य की भावानुभूति स्पष्ट हागो।

क-भाव —काय शास्त्र मे भाव क तीन रूप प्रचलित है। (१) एक भाव वह है जिस वासना कहत है और जा प्रत्यक् मे एक रस 'याप्त रहता है। वय त्तिक भाव या चित्तवर्तियाँ इसी वासानारूप भाव से उत्पत्ति लेते हैं। वासना ही सभी मे चित्तवर्तिया की प्ररक गक्ति है। उगाहरणाय वासनारूप शोध पहले से हम मे विद्यमान रहता है जो कारण पाकर जब उदभत हाता है तो शोधनामक मनावग का रूप लेकर विविध चष्टाओ—अधर—दगान नश्रो की रक्तिमा मष्टि वध आदि—क द्वारा व्यक्त हाता है। मवद्गुल के अनुसार वासनारूप भाव का मूल प्रवृत्ति कह सकते हैं जिस उ-होने इस्टिडकट नाम लिया है। यही वासनारूप भाव अवयक्तिक अथवा सामाय होता है। यह साधारणी भूत भाव सब मे एक-रस रहकर काय द्वारा व्यक्त होता है और रस कहलाता है।^१ यह वासना मभी को अपने अविद्येय त-तु मे पिरोकर भावात्मक रूप मे एक क्रिये रहनी है^२ अतएव रसानुभूति काल मे सभी रहस्य एक ही अनभूति मे लय प्राप्त करते हैं। इसी की देवी रूप मे उपासना का आगमा मे विद्यमान है।^३

१ अस्म-मते मवदनमेव आन-धनम आस्वाद्यते। तत्र का दुस्त गड्डा ? केवल तस्थव चित्रताकरण रति गोका-वासना-ध्यापार तदुब्दाधन चाभिनया-ध्यापार। अभिनव भारती—६ ३३ पृ० २९२

२ न ह्य तच्चित्तवृत्ति-वासना गूय प्राणी भवति। केवल कस्यचिन् काचि दधिका चित्तवृत्ति काचिद्रूना। कस्यचिदुचिन-विषय नियतित्रता कस्य-चिदयथा।—वही पृ० २८३ ॥

या देवी सबभूतगु लज्जा रूपण मन्थिता।

—दुगा मन्गनी—अध्याय ५ ॥

(२) दूसरा भाव वासना का स्थूल उदभूत रूप है जसा कि ऊपर ही स्पष्ट हो चुका है। वही वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक लौकिक भाव है। चिरावृत्ति मनावग, मानस ध्यापार आदि से इसा का व्यवहार होता है। इमे चार प्रकार के अनुभावो—चेष्टाओ द्वारा प्रकट किया जाता है। कायिक वाचिक, सात्त्विक और आहाम ये चार प्रकार के अनुभाव होते हैं जो भाव के काय रूप हैं और भाव इनका कारण भूत है। इन अनुभावो का अभिनय करके अथवा काव्य म शब्द चित्रित करके यहा लौकिक भाव उपस्थित किया जाता है और फिर इस लौकिक भाव के माध्यम से रसिकगत अलौकिक वासनामय भाव व्यक्त होता और रस रंगा को पहुंचता है। अनुकाय (आश्रय—नायकादि) का भाव इसी दूसरी जाति का (लौकिक) है।

(३) तीसरा भाव वह है जो अनुकारक नट या कवि—म अनमान गम्य हाता है चतुर्विध अभिनय से इस भाव का इसी प्रकार अनुमान होता है जिस प्रकार घुआं देखकर आग का। ऊपर के दोनों 'भाव का अर्थ 'हाने वाला' है—भवति इति भाव। परन्तु तीसरे भाव की व्युत्पत्ति भाव यति इति भाव' है—अर्थात् यह भाव सहृदय के भाव को भावित करता है तब रस की निरूपति होता है।^१

रस निरूपति के परिप्रक्ष में तीनों भावों पर समन्वयात्मक दृष्टिपान करें तो अभिनीत अनुभावा से नटगत भाव तत्ताय अनुमित होता फिर नट की भूमिका रूप आश्रय का लौकिक भाव (द्वितीय) आता है और तदनंतर रसिक अपन भीतर वासनारूप भाव प्रथम को व्यक्त पाना और रस—दशा में जा पहुंचना है।

ख—अनुभूति—भाव के स्पष्ट हो जाने पर अनुभूति तत्त्व का प्रथम खाना है। अनुभूति कीन—सा तत्त्व है जो काव्य रचना तथा वाक्यास्वात् का साधन बनना है? व्युत्पत्ति की दृष्टि से वह भाव के परचान की घटना (अनु+भूति) है। भाव जब मानस—पटल पर उदित होता है तो भावक द्वारा उसका साक्षात्कार ही अनुभूति है। स्थायी भाव की ऐसी ही अनुभूति रस कही जाती है। यही साक्षात्कार अतदंगन है। अनुभूति' शब्द नया है। प्रतीति

१ नानाभिनय—मम्बदान भावयन्ति रसानिमान्।

यस्मात् तस्मादमी भावा विनया नाटययोक्तमि ॥

सविद आस्वाद आदि गद्य प्राचीन है। चवणा भी एक ऐसा ही शब्द है। इस प्रकार भावानुभूति, भाव चवणा, भाव सक्ति आदि एकाधिक शब्द हैं। इतना अवश्य है कि भावानुभूति प्रायः कवि के लिए और भाव-प्रतीति, भाव चवणा आदि प्रायः रसिक के लिए आते हैं।

जब वासनारूप भाव व्यापक है और सब में विद्यमान है तो उसको सनातन अनुभूति क्यों नहीं होती? इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त के अनुसार दिया जा सकता है कि माया अथवा अज्ञान का हमारे ज्ञानत्व को ढके रखा करता है। यह ज्ञानतत्त्व ही अनुभूति पदार्थ है जो आत्मा का स्वरूप है। जब हम अनुभूति साक्षात्कार आदि कहते हैं तो हमारा तात्पर्य अज्ञानावरण कर्म से होता है। हमारे अंतःकरण की वृत्ति द्वारा अज्ञान का विच्छेद होता है तो अनागत होकर प्रतीति खिल उठती है यही अनुभूति है। इस अवस्था में अंतःकरण का तन्मयीभाव हो जाता है।^१

ग-रहस्यानुभूति—रहस्य-तत्त्व तत्त्वद्रष्टाया तथा योगियों के साक्षात्कार की वस्तु है रहस्य चतुर्थ सिद्धा के गुह्य रूप का नाम है जो सभी सासारिक विषयों के त्याग या चरम निषेध द्वारा अपरिच्छिन्न होकर उपलब्ध होता है। कवीर ने स्पष्ट कहा है—

चीटी चाउर क. चन्दी बीच म मिलि गई लरि ।

कह कवीर दुइ न चल, इकलइ दूजी डारि ॥

अतः सासारिक प्रतीतियाँ स रहस्य प्रतीति या रहस्यानुभूति भिन्न होती हैं। सासारिक प्रतीति की प्रकिया यह है कि चित्तवृत्ति और चित्ति विम्ब दोनों एक साथ विषय-घट आदि—को व्याप्त करते हैं। चित्तवृत्ति द्वारा अज्ञान के आवरण का नाश होता है और विम्ब या आभास जो चतन्य का ही रूप है, उस विषय के साथ रह जाता है यही ज्ञान है। यही प्रतीति लोक-व्यवहार में देखी जाती है। परन्तु रहस्य तो स्वयं ही चित्ति तत्त्व है अतः वहाँ चिदाभास या चतन्य विम्ब का उपयोग नहीं होता

१ बुद्धि-तत्त्व चिदाभासों द्वारापि व्याप्तुतो घट्म ।

तत्रानान धिया नयेदाभासेन घट् स्फुरेत ॥

—पञ्चदशी-वेदान्तसार म उद्धृत ।

२ चवणाचास्य चिन्तावर्णनम एव—तत्राकारान्त चरण वृत्तिर्वा ।

—रस गगाधर—रसनिरूपण सूत्र ॥

केवल चित्तवृत्ति अज्ञानावरण भंग करती है और चतुर्थ स्वयं प्रकाशित हो जाता है। एक उदाहरण से इसे वेदांत में समझाया गया है—दीपक जब अपने से घृणक घट को प्रतीति गम्य बनाना है तो अंधकारावरण का हटाता और अपने प्रकाश मण्डल से घट को नाशित कर देता है परन्तु जब दीपक अपने ही का प्रतीति गम्य करता है तो कबल अंधकार हटा देता है और स्वयं ही स्फुरित ही उठता है। दीपक के समान ही चतुर्थ या अत्मतत्त्व भी स्वयं प्रकाश है अतः सासारिक प्रतीतियों से उसकी प्रतीति विलक्षण होती है।

इस याग की प्रक्रिया से या समझ सकते हैं—जीव जाता है परम चतुर्थ जगत्तु और चित्तवृत्ति ज्ञान का साधन है। यही जाता है—ज्ञान साधन की त्रिकुटी है। इन तीनों का क्रम प्रमाणा, प्रमेय और प्रमाण कहते हैं। निर्विकल्प समाधि में यह त्रिकुटी नहीं समाप्त होती और जीव परम चतुर्थ का सूक्ष्म एवं स्थिर चित्तवृत्ति के प्रवाह में चलता हुआ बोध करता है। निर्विकल्प समाधि में चित्तवृत्ति अखण्ड आकार ले लती है तो प्रमाणा और प्रमेय का भेद मिट जाता है और दोनों का योग हो जाता है और त्रिकुटी समाप्त हो जाती है।^१

यही 'रहस्यानुभूति' है जिसके लिए कबीर ने अपनी प्रणाली व्यक्त की है —

'सुरति' समानी निरति में निरति रही निरघार ।

सुरति-निरति परचा भया तब तल स्वप्नम् दुवार ॥

^१ ऊपर वेदान्त की रहस्यानुभूति स्पष्ट हो गई है। कबीर की रहस्यानुभूति किंचित् अंतर से आई है। कबीर भक्त थे अतः निर्विकल्प समाधि के स्थान पर 'सुरति' और निर्विकल्प समाधि के लिए 'निरति' का प्रयोग है। यह प्रणाली 'रति' तत्त्व या प्रमत्त तत्त्व लेकर चली है। सुतरा रति = सुरति और 'निरति' रति = निरति।^२ सुरति भक्तसाधक की वह अवस्था है जिसमें प्रमाणा, प्रमालम्बन और प्रम की त्रिकुटी बनी रहती है परन्तु निरति में अखण्डता उपलब्ध हो जाती है। यही भक्तों की रहस्यानुभूति है। सीता ने राम का प्रथम साक्षात्कार इसी प्रकार किया था—

१ देखिए-वेदान्त सार—अहं ब्रह्मास्मि निरूपण ॥

२ श्रीमान् ठा जगदश सिंह के स्नेहसिक्त प्रवचन के आधार पर।

(सुरति) देखि रूप लाचन ललचान ।

हरखे जनु निज निधि पहिचान ॥

(निरति) धके नयन रघपति छवि देखें ।

पलकाहि हू परिहरी निमैखें ॥'

यह चित्र बाह्य साक्षात्कार का है। परन्तु कवि को प्रेम की वही प्रणाली अभिप्रत है अतः परमानन्द की परिणति इस प्रकार हाती है—

लाचन मग रामहि उर आना ।

दीह पलक बगार सघानो ।

यह अवस्थाकार में परिणत चित्तवृत्ति ही रहस्यानुभूति है जो सर्वविधना अलौकिक है। भारतीय रहस्यानुभूति की प्रणाली षाड्यद्वय अन्तर से यही रहती है। मूफ़ी कवि जलालुद्दीन ने यही रूप कहा है—

मैंने इत दूर कर डाला है मैंने देख लिया है कि ज्ञाना लाक एक है,
एक में छाजता हूँ एक में मुनता हूँ एक में दखता हूँ एक में पुकारता हूँ।
वही आदि है वही अंत है वही बाहर है वही भीतर है।^१

यही बात बगसाँ ने इस प्रकार कहा है—

यदि ससार के प्रति अनागतिकि पूर्ण हो जाय और वह अपने किसी भी ऐश्वर्य प्रत्यय द्वारा किये किसी व्यापार के प्रति चिपके नहो तो यही एक कलाकार का आत्मा होगा जसा कि ससार न पहले देखा न होगा। वह मुगसन् समानरूप से प्रत्येक कला में पावगत होगा या या कहें कि वह सब का एक में परिणत कर लगा। वह वस्तुमात्र को उसक सहज शुद्ध रूप में देन लगा।^२

१ श्रुति—कुमारी एवलिन अप्पडरहित्—श्रि मिस्टिक वे—पृ० १५

२ Where this detachment complete Says Borgson did the soul no longer cleave to action by any of its perceptions it would be the soul of an artist such as the world has never yet seen It would excel alike in every art at the same time or rather it would fuse them all into one It would perceive all things in their native purity Ibid p 9 10

ध—रहस्य भावानुभूति—उक्त रहस्यदृष्टा की ही 'कविमनीषी परिभू स्वयम् की सना मिलती है परन्तु साधारण कवि, जसा कि हम काव्य शास्त्रीय आधार पर देखते हैं रहस्यानुभूति न करके रहस्य की भावानुभूति करता है। भावानुभूति की तमयता रहस्यानुभूति की तमयता से भिन्न होती है। रहस्यतत्त्व को आल्म्बन विभाव के रूप में पहल बुद्धि द्वारा ग्रहण करके फिर भावना द्वारा उस प्रतीति योग्य बनाकर भावात्मक अनुभूति में लाना साधारण कवि का काम होगा। रहस्यानुभूति' में चित्तवृत्ति अखण्ड रहती है और एक रस चित्त में विश्राम पा लती है परन्तु भावानुभूति में विभाव अनुभाव और सञ्चारी भाव के समस्त स्थायीभाव की परिधि उस चतय का घरे रहती है। आवरणमङ्ग दाना में समान है परन्तु वृत्ति में अन्तर है जसा कि पण्डितराज जगन्नाथ ने स्पष्ट कर दिया है जहाँ तक चतय का सम्बन्ध है रसरूप भावानुभूति नित्य है स्वयं प्रकाश है परन्तु रति आन्ति स्थायी भाव के आधार पर वह अनित्य है और अन्य द्वारा प्रकाशित होती है। उसकी प्रतीति तो अवश्य वही है जिसे चतयगत आवरणमङ्ग कहन है अथवा तमयता वाली चित्तवृत्ति कह सकते हैं परन्तु पद्महन्त के आस्वादवाली समाधि से वह पृथक अवश्य है क्योंकि विभावादि विषय से युक्त चतय की भावात्मक प्रतीति होती है। एक ओर अन्तर है कि यह प्रतीति समाधि में नहीं होती प्रत्युत काव्यशक्ति द्वारा कायरूप में उपस्थापित का जा सकती है।

इसीलिए रस को ब्रह्मानन्द न कह कर 'ब्रह्मानन्द-सहोदर' कहा जाता है। उसे ब्रह्मानन्द का अनुज कह तो अधिक सगत होगा क्योंकि जा ब्रह्मास्वा है उससे कुछ छोटी भाव सबलित प्रतीति रस है जो चतन्यरूप हाकर भी विमुक्त नहीं रहता प्रत्युत विभावादि से घिर कर रञ्जित हाकर आती है। इसीलिए आल्डस हक्सल' महोदय ने इसे प्राय सकण्डहेण' कहा है।^१ प्राय

१ चिदशमादाय नित्यत्वं स्व प्रकाशत्वं च सिद्धम् । रत्यायमादाय त्वनि त्यत्वम् इतर भास्यत्वं च । चवणाचास्य चिद्गतावरणमग एष प्रागुक्ता तदाकारान्त करणवृत्तिर्वा । इयच परब्रह्मास्वादात् समर्थविलक्षणा विभा वादि विषय सबलित चिदानन्दालम्बनत्वात् । भाव्याच काव्यव्यापार मात्रात् ॥—रसगणधर—प्रथमब्रानन—रस ॥

2 When poets or metaphysicians talk about the subject matter of the Perennial philosophy it is generally second hand
—The perennial philosophy p 4

द्वितीय श्रेणी कह कर उ हने उन कवियों को अलग कर लिया है जिन्हें वास्तविक रहस्यानुभूति भी होती है और भावानुभूति भी ।

इ—रहस्य भावानुभूति की प्रक्रिया—आगे चल कर भावना तत्त्व पर विचार किया जायगा जिसकी मध्यस्थता कवि और रसिक दोनों के लिए अनिवार्य है । भावना की मध्यस्थता कवि की अनुभूति प्रणाली को दो स्थूल स्थापना प्रकट करती है— (१) विचार से भावना में हाकर अनुभूति में जाना प्रथम प्रणाली है और (२) अनुभूति से भावना में होकर विचार में पहुँचना दूसरी । प्रथम को अभिव्यक्ति विषयप्रधान या दृश्यप्रधान या आन्वेषिकत्व होगा क्योंकि उसे वषय विषय चाहे वह रहस्य ही क्यों न हो । पहले से विचार में मिल चुका होगा जिसकी भावना करते करते वह अनुभूति के क्षेत्र में पहुँचेगा—यही द्वितीय श्रेणी की प्रतीति होती है । प्रथम अनुभूति ही नहीं हुई है परन्तु दूसरी प्रणाली पूर्णतः आत्मप्रधान विषयगत भावार्थक अथवा 'संज्ञे' किन्तु होती है क्योंकि वहाँ आत्मतत्त्व अनुभूति में पहले जाता है—ये ही अनुभव कभी वास्तविक रहस्यभावक हैं—फिर भावनागम्य हाकर विचार में परिणत हो वाणी में व्यक्त होता है, जसी कि गोस्वामी तुलसीदास की मायता है—

हृदय सिन्धु मति सौप समाना । स्वानि सारदा कहाँहि सुजग्ना ॥
जो बरखइ वर बारि बिचारू । होहि कवित मुक्तामनि चारू ॥

विषयप्रधान कविता के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि कवि ने अनुभूति तक पहुँचने का कष्ट उदाया ही है । कलाचातुरी से भावनागत तथ्यों का वर्णनमात्र भी रसिक को छलना में ल सकता है और वह रस दान को प्राप्त हो सकता है ।

रसिक के लिए अनुभूति अनिवार्य है क्योंकि वही रसदशा है । वह काव्य में विभावादि तथ्यों को पहले विचारगत करता है फिर भावनागम्य कर अनुभूति में लाता है । आत्मप्रधान कवि की तुलना में रसिक की चाल उलटी हुआ करती है ।

आज ने भी गोस्वामी जी के समान ही कवि के लिए अनुभूति की प्राथमिकता दी है । कविना पढ़ कर या सुन कर हम नहीं जान सकते कि कवि की अनुभूति किस वाग्नि की है । इसके लिए कवि का व्यक्तित्व जानना परमावश्यक है ।

रहस्य भावना

कार अभिव्यक्ति और अनुभूति के मध्य में भावना की प्रतीक्षा की

धीर सकेत किया जा चका है । भावना द्वारा ही भाव की 'यजना' संभव है^१ परन्तु भावना साक्षात् 'यजक' हाती है, उसे अन्य साधन की अपेक्षा नहीं होती ।^२ यह भावना कई नामों और प्रकारों में पाई जाती है —

१ नागेश भट्ट ने भावना का अर्थ 'पुन पुन अनुसंधान' किया है ।^३ एक ही भावनीय पदार्थ का बारम्बार एकतानता के साथ चिन्तन ही भावना है ।

२ वेदान्त में इसी को 'निदिध्यासन'^४ भी कहा जाता है जो प्रतीति के एकतान प्रवाह का ही नाम है । मनन^५ इसी की पूर्वावस्था है अतः कभी कभी इस अर्थ में भी भावना का तथा भावना के अर्थ में मनन का प्रयोग हुआ जाता है । ऊपर योगेश्वरी जी के उद्धरण में 'मति' शब्द इसी 'मनन' और फलतः भावना अर्थ का दत्ता है ।

३ योग में भावना का अर्थ में ध्यान का प्रयोग हुआ है ।^६

४ न्याय में भावना का पर्याय ही सा 'चिन्ता' 'गन्' आता है जिस की सहायता से 'पुञ्जान' याग का अद्वैत तत्त्व की प्रतीति होती है ।^७ यह 'चिन्ता' भी अलौकिक साक्षात्कार का ही नामांतर है ।^८

५ व्याकरण में 'भावना' का पर्याय 'यापार' अथवा 'क्रिया' है ।^९ इसी भावना-व्यापार का महामुनि भरत ने 'भाव' नाम भी लिया है ।^{१०}

- १ भावस्यापि भावना द्वारव व्यञ्जकत्वात् ।—रसगगाधर भावध्वनि ।
- २ भावनाहि द्वारान्तरमनपक्ष्य रस व्यनक्ति ।—उक्त स्थल पर नई मधुरानाथ की टिप्पणी ।
- ३ भावना पुन पुनरनुसंधानम् ।—उक्त रसगगाधर पर नागेश भट्ट टीका ।
- ४ विजातीय-देहादि प्रत्यय-रहिताद्वितीय-वस्तु-सजाताय-प्रत्यय - प्रवाहो निदिध्यासनम् ।—वेदान्तसार
- ५ मनन तु अनवरतमनुचिन्तनम् ।—बहो
- ६ तत्र प्रत्ययकतानता ध्यानम् ।—पातञ्जलयोगसूत्र ३ २ ॥
- ७ देखिए—'यापसिद्धान्त मुक्तावली—कारिका ६६ ॥
- ८ तद्विषयक समय तद्विषयकमलौकिक—साक्षात्कारात्मक ज्ञान भवति (चिन्ता) ।—उक्त पर किरणावली—टीका ॥
- ९ व्यापारां भावना सर्वोत्पादना सर्वत्र क्रिया ।—व्याकरण भूषणसार १०५ ॥
- १० भू इति करणघातु । तथा च भावित वासित कृतम् इत्यनर्थान्तरम् तच्च व्याख्ययम् ।—नाटयशास्त्र-सप्तम अध्याय ॥

६ यह भावना व्यापार व्यापना भी कहा गया है क्योंकि उसके द्वारा तमयोभावरूप व्याप्ति को उरलघि हाती है । अर्थात् भावना करते-करते ही हृदयानुजल वस्तु के साथ तमयता हो जाती है ।^१ यह याप्ति वमी हो है जसी की सूखी लकड़ी में आग की याप्ति होती है तो लकड़ी आग का रूप लेकर तमय हो जाती है ।^२

७ उपयुक्त व्यापनारूप भावना का ही भटटनायक भावकत्व अथवा साधारणीकरण व्यापार कहा है ।^३ तदनुसार काव्य का भावना नामक शब्द व्यापार विभाव अनुभाव और सञ्चारीभाव की अवयविक अथवा साधारण रूप में उपस्थापित करता है जिसे म के आस्वाप्ति होने की योग्यता पा जाते हैं और रस के घटक तत्त्व बनते हैं । भटटनायक की भावना मीमासा से ली गई है अतः उसने तीन अंग हैं—साध्य, साधन और इति क्त व्युत्पत्ता ।^४ रस साध्य है विभावादि साधन है और कविकृत गव्दाय योजना इति क्त व्युत्पत्ता है । इस प्रकार हम भावना की याप्ति कवि से सहस्य तक रहती है ।

८ ऊपर सूखी लकड़ी में आग की व्याप्ति के उदाहरण से स्पष्ट है कि लौकिक व्याप्ति की भी भावना कहते हैं जो मूलतः अलौकिक व्याप्ति में अभिन्न है । तल में गुप्पादिग घ की^५ अथवा वस्त्र में कस्तूरिका-नाथ^६ की व्याप्ति में लौकिक भावना देखी जा सकती है ।

१ वाचिकाद्या अभिनया नियतता विजहत साधारणीभावमनु प्राप्ता सामाजिक जनमपि व्याप्नुवति स्वचित्त-व्यापना द्वारा तेन भावयन्ति सामाजिकारमानम् । —उक्त पर अभिनवभारती ।

२ योर्धो हृदय सवादी तस्य भावा रमाश्व ।
सरीरव्याप्यते तेन शक्यकाष्ठ मिवाग्निना ॥ (भाव—व्यञ्जना)

—नाटयशास्त्र—७७ ॥

ध्व-यालोक लोचन १ १ पर उदयुत है जहाँ बालप्रिया टीका ने ठीक ही भाव का भावना अर्थ दिया है ।

३ काव्यप्रकाश—तृतीय उल्लास—रसनिष्पत्ति ।

४ मीमासा—यावप्रकाश—आर्षीभावना ।

५ लाव पि घ प्रसिद्धम् । अहो ह्यनेन गधन रसेन वा मयमय भावितम्, वासितमिति । तच्च व्याप्ययम् । —नाटयशास्त्र—अध्याय ७ ॥

६ न हि कस्तूरिकागध वस्त्रे तास्य विपत्र गुणस्याम शान्ते । न च तादृग गुणान्तरात्पति मावस्य भावित्वात् साधना नाम वस्त्राणी च विना

ऊपर जिस भावना की विवेचना की गई वह एकतान प्रतीति का प्रवाह है जो प्रथम पन्था का तथा प्रवाता का व्याप्त कर लेती है, यही साराश हुआ। आध्यात्मिक क्षत्र में यह भावना दो प्रकार से उपयोग है। एक तो जब तक पूर्ण आनन्द रूप रहस्यानुभूति की दशा नहीं आती तब तक इसी भावना में रहस्यत्व को गम्य बनाया जाता है और धीरे धीरे मनोवृत्ति के स्थिर हो जाने पर साक्षात्कार रूप समाधि प्राप्त हो जाती है। दूसरे साक्षात्कार हो जाने पर भी विक्षयकाल—समाधि के बाहर—में भावना द्वारा ब्रह्म तत्त्व के साथ सम्बन्ध अविच्छिन्न रखना जा सकता है।

काव्य में भावना द्वारा ही रसिक रसानुभूति तक पहुँचता है यह स्पष्ट हो चुका है। कवि भी पहले अनुभूति करके भावना में अनुभूत भाव का पुन पुन अनुसन्धान करता है तभी उसे अभिव्यक्ति के अनुरूप बना पाता है। हो सकता है कि कवि विचारगत तथ्यों का ही भावरूप में ढालना चाह तो भी भावना का ही साँचा उसे आकार देता है। योगी के लिए भावना साधन मात्र है पर कवि के लिए वह साधन भी है और साध्य भी। भावना के बिना जब अभिव्यक्ति संभव ही नहीं तो निश्चय ही कवि को भावना की उपलब्धि साध्यरूप में अनिवार्य है और तभी वह साधन बन सक्ती है।

श्लोके के अनुसार अनुभूति प्रातिम प्रथम है या 'इष्टयुटिव नलिज' है जिसकी आन्तरिक अभिव्यञ्जना भावना है।

रहस्यभाव की भावना बनाम रहस्यभावना

यों 'रहस्य भावना' नाम से ही 'रहस्य की भावात्मक भावना' को भी प्रतिपादित कर लेते हैं परन्तु दोनों में अन्तर है। प्रथम योगिक उपलब्धि का विषय है तो द्वितीय काव्योपलब्धि की वस्तु है। योगी रहस्यत्व की साक्षात् भावना करता है जब कि कवि उसी की भावात्मक भावना करता है। ऊपर पण्डितराज के उद्धरण में यही अन्तर स्पष्ट हो चुका है। हो सकता है कि किसी कवि ने रहस्य का साक्षात्कार किया हो, पर कवि से उसका मांगी का रूप पृथक होगा। साक्षात् भावना करके भी कविता के लिए तन्वियक भाव की भावना अपेक्षित होगी। साक्षात्कर्ता अपने साक्षात्कृत सौन्दर्य की प्रतिमा की ढाली में भर कर कवि को भेंट करता है—

प्रतिपत्तः । केवल वस्तुरिका द्रव्यमेव तावद्रूप-देग चतयात्रमण-स्वभाव
वस्तुनिवेदि सदा प्रतिपत्तिमाधत्ते ।—उक्त पर अभिनव भारती ।

“मैं इन अपलक नयना से देखा करता उस छवि को, प्रतिभा डाली भर लाता, कर देता दान सुकवि का । आँसू भाव की भावना को ले कर ही आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—

मनोमय कोण ही प्रकृत काव्य भूमि है ।^१

रहस्यवाद शब्द का अर्थ

भारत के लिए रहस्य और वाद का द पयक-पूयक जितना पुराने है उतना ही अर्वाचीन है समस्त पद— रहस्यवाद । इस पद का घटक 'वाद श' विंगप महत्त्व का है ।

वाद शब् की निष्पत्ति व घातु+घञ प्रत्यय = वद+अ स हुई है अत इसका अर्थ क्यन से मिलता जुलता है । 'यायदशन म वाद एक प्रकार की 'कथा है जिसम सिद्धान्त के पोपक तथ्यों का समाहार होता है ।^२ शक्ति वाद, युत्पत्तिवाद आदि मे ऐसे ही प्रयाग हैं । आगे चलकर सिद्धान्त^३ के ही अर्थ में वाद का प्रयोग चल गया दीखता है जब 'यायसिद्धान्त सास्यसिद्धान्त और वेदान्तसिद्धान्त को त्रमग आरम्भवाद परिणामवाद और विवतवाद कहते हैं । मायावाद सत्कायवाद परमाणुवाद आदि भी सिद्धांतायक प्रयोग हैं । सिद्धांत चार प्रकार के बतलाय गए हैं—

१ सवतत्रसिद्धान्त जा सभी शास्त्रो म भाय हो^४, जस पृथ्वी का आकपण ।

२ प्रतितत्रसिद्धान्त शास्त्र-शास्त्र का पूयक होता है^५, जसे वदान्त का मायावाद ।

३ अधिकरणसिद्धान्त आधारभूत होता है जो दूसरे सिद्धांत को सिद्धि म उपयागी होता है^६ जस ग्रह-गति सिद्धान्त ग्रहणसिद्धान्त का आधार है ।

१ चिंतामणि—भाग २ पृ० ८० ।

२ न्यायसूत्र १ २ १ ॥

३ वही १ १ २६ ॥

४ वही १ १ २८

५ वही १ १ २९

६ वही १ १ ३०

४ अम्मुपगमसिद्धान्त, जो बिना सिद्ध किए मान लिया गया हो', जने आजकल विविध ग्रहों के धरानलों के विषय में कुछ अपुष्ट सिद्धान्त (hypothesis) निर्धारित करके अन्तरिक्षयात्रा चल रही है।

'रहस्यवाद' साहित्य का प्रतिष्ठित सिद्धान्त है, क्योंकि वह चाहे जमे भी हो साहित्यालोचन के क्षेत्र में ही गढ़ा और माना गया है। अतः यह आवश्यक नहीं कि विषयान्तर की मान्यताएँ उस पर पूर्णतः लागू जायें। अलबत्ता, उमे भा विषयान्तर से बच रहना है, अन्यथा आत्महानि ही उसका हाथ लगगी।

साहित्य में रहस्यवाद का दो स्थूल प्रकारों में प्रयोग होता है—

(क) काव्यशास्त्र अथवा साहित्यालोचन के क्षेत्र में वह एक सिद्धान्त है जिसमें रहस्य को काव्य तत्त्व मानकर विवेचना की जाती है कि किस कव्य में रहस्यत्व की व्यंजना हुई है किसमें नहीं। 'रहस्य तत्त्व उपनिषदा की परम्परा से गृहीत होगा पर 'वाद' के अधीन यह समस्त विवेचना काव्य शास्त्रीय होगी।

(ख) काव्यरचना के क्षेत्र में 'वाद' का अर्थ धाराविशेष, प्रवृत्तिविशेष और शैलीविशेष होगा। प्रसाद जी ने रहस्यवाद को काव्य की मुख्य धारा कह कर उसकी व्याप्ति बौद्धिक काल से अविच्छिन्न मानी है। परन्तु प्रसाद जी के समान सभी कवियों का, जो अलौकिक आलम्बन का व्यंजना करते हैं, रहस्यवादी धारा के मूल कवि न माने जायें चाहिए फिर भी वे उसी प्रवृत्ति के कवि कह जा सकने हैं श्रीमती महादेवा वर्मा का एक उदाहरण रहस्यवादी प्रवृत्ति का परिचायक है—

'तेरा अघर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित-मिथिन हाला
तेरा ही मानस-मधुगाला।
फिर पूछू क्या मेरे साकी !
दते हो मधुमय विषमय क्या ?
तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या ?'

गली विशेष का भी एक उदाहरण आसू से दृष्टव्य है—

सोझो म कह सकते हैं—'मिस्टिसिज्म जहाँ म अपना मुख्याथ बदल कर लक्ष्याथ मे या व्यावहारिक लौकिक अथ म प्रवेग करता है हमारा रहस्यवाद वहाँ से अपना मूल अथ लेकर चलता है 'मिस्टिसिज्म का वाच्याथ उसकी सोमा म आता ही नहीं ।

एक बात और ध्यान देने की है कि रहस्य और मिस्टी पर्याय हो सकते हैं । रहस्य और मिस्टिक नहीं अत वाद' और इज्म का जहा पर एकाथक मान लेते हैं वहाँ भा रहस्यवाद मिस्टी इज्म अथ हा अधिक दता है 'मिस्टिसिज्म' अथ सुदूरादृष्ट लगता है परन्तु मिस्टी शुद्ध मज्ञापद है जब कि 'रहस्य सज्ञा विघापण उभयात्मक है अत ठीक से व्याकरण-सम्मत अनुवाद बनेगा—इसम सदेह ही है ।

अन्त म, यह मान लना उचित ही है कि किमी प्रकार हा हमारा 'रहस्यवाद अब पूण प्रतिष्ठित भाषा'तर निरपेक्ष बहु प्रचलित स्वतंत्र पारिभाषिक शब्द हो गया है । भाषा के भण्डार म ऐसी मान्ति निश्चय उभय आधारो क बहुत से शब्द सोजे जा सकते हैं अत इस प्रसंग का आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं रहा है ।

रहस्यवाद—विषयक वैमत्य और भ्रात धारणायें

१ इन पवितयो क लक्षक क रहस्यवाद विषयक एक लेख के लिए श्री जयदेव सिंह ने लिखा था 'आपने 'रहस्यवाद का सो-दर्शानुभूति की दृष्टि स परखने का चेष्टा की है । इस दृष्टि से आपन जो कुछ लिखा है वह ठीक ही है ।' इस उद्धरण स श्रद्धेय ठाकुर साहब की अर्घि का सकेत मिलता है जिसका स्पष्टीकरण ऊपर हो भी चुका है । कवि की अनियमित म सत्य और सौन्दर्य पृथक नहीं होते यदि सौन्दर्य सत्ता अलौकिक निमीम हा और उसी म चिरमगल की प्रतिष्ठा कवि का वण्य हा । कम से-कम प्रसाद जसे मनीषी कवि को यही निश्चित धारणा है—

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर मेरे इस मिथ्या जग क
य कवल जीवनसगी कल्याण कलित इस मग के । —आसू

वस्तुतः वह दशा सत्य से कब-कहाँ-कस दूर है जब कवि साक्षी है—

'निसर सा पिर भिर करता माधवी कज छाया म
चेतना बही जाती धी हो मन् मुग्ध माया म ।'—बही

जोर जब योरप के कवि घर घर कीटम स्पष्ट घोषित करते हैं—'सौन्दर्य सत्य है सत्य सौन्दर्य । तब कस कहा जाय कि परम तत्त्व के तीनों पक्ष—सत्य गिव और सुन्दर—परस्पर भिन्न रह भी सकते हैं व तो सांख्य क तीन गुणों के समान परस्पर-वर्ति अया-यान्य आदि ही रहेंगे । इसी प्रकार की सौन्दर्य मयी प्रणयदृष्टि से देखने वाली गोपिया ने उद्धव से (रत्नाकर की कल्पना म) कहा था—

ऊँची ब्रह्मज्ञान की बखान सब जाते भूलि,
देखि लेते काहूँ जो हमारी अखियान त ।'—उद्धव शतक

परन्तु कवि की ही आँखा से सभी देखन लगे यह मिथान कभी पूरा हागा इसमें बीसवीं शती की बज्ञानिक सवप्लाविनी धारा ने बहुत बडा सदेह पदा कर दिया है । आज विचारणीय तो यह है कि असीम को जगत म देखना एक है परन्तु जगत् को ही असीम बना लेना दूसरी बात है जो भ्रान्त है । असीम सौन्दर्य, अनन्त सौन्दर्य कणा म बिखरा है और उन कणों म असीम की व्याप्ति देख लेना कवि साधक का काम है कवि मानी का काम नहीं । प्रसाद का सौन्दर्य यद्यपि कणमात्र नहीं है—

सौन्दर्य गल राई सा जिस पर वारी बलिहारी,
उस कमनीयता कला की सुपमा धी प्यारी प्यारी । —आसू

परन्तु कमनीयता की कला मात्र है सम्पूर्ण कमनीयता नहीं । इस मूढम विवेक क बिना तो सभी काव्य रहस्यवादी हो बँठेंगे ।

२ इस विषय को अन्य विद्वाना ने भी विचारणीय महत्त्व दिया है । प्रभाकर माचव का रहस्यवाद् पर लेख न केवल ऐतिहासिक विकास क्रम पर प्रकाश डालता है अपितु ऐसी वाक्यधारा का अन्तर्निहित तत्त्व भी हृदयगम कराना चाहता है । परन्तु जब उमर खय्याम जैसे विद्रोही कवि की तुलना मे भगवान गङ्गुर का उद्धरण प्रस्तुत कर देते हैं तो धर्म्य को सिर उठाने का बहुत बडा कारण मिल जाता है । खय्याम इसलाम क आदर्शवाद क विरुद्ध विद्रोह करके मसूर के 'अनलहक' को शरण लेता है जो उसके बुद्धिवाद् का उन्नत रूप भल ही मान लिया जाय पर गङ्गुराचार्य के जोड़ म कम बिठाया

जायगा ?^१ इस विद्रोह का धारा ही तो भारतीय उद्गू साहित्य के आगिकाना गजला में पाई जाती है। मोमिन के इस प्रसिद्ध शेर का लें—

तुम मेरे पास होते हो गया
जब कोई पाम मनहीं हाता ।

इसे कवि की शुद्ध रहस्यानुभूति माना जाय, इसके पूर्व कवि का व्यक्तित्व घाघक बन जाता है और दिखता है कि प्रेयसी के लौकिक साधिष्य का ही अलौलिक महत्व ने डाला गया है। अब कुछ इस प्रकार हागा—'जिस प्रकार विषयान्तर साधिष्य का परित्याग करके ही परमात्मा मिलता है उसी प्रकार प्रेयसी का मिलन भी अव्य साधिष्य का त्याग चाहता है। ऐसी कविताओं को रहस्यवानी प्रवृत्ति का उदाहरण माना जाय, तभी ठीक है।

डा० रघुवश ने अनक पृष्ठा में छायावादी काव्यधारा को पतनी-मुस बतलाते हुए आधुनिक काल की रहस्यवादी कही जाने वाली कविताओं के विषय में सन्नोपप्र^२ सम्मति नहीं दी है।

वा^३ में हम भ्रम से आकर्षित हो कर कुछ कविता में अपनी छायावादी कविता को रहस्यात्मक भूमिका प्रदान करने का सचष्ट प्रयास भी किया है। बौद्ध-दुःखवाद जानन्दमूलक अद्वैतवाद (धवागमा का) तथा सूफी और सन्तों के प्रेममूलक अद्वैतवाद आदि का आधार प्रस्तुत किया गया। पर इस बौद्धिक प्रपणीयता में रहस्यात्मक स्तर का आत्मिक आन्दोलन और भावावश नहीं है। प्रतीकों जुटान तथा 'यक्तिगत प्रेम आदि भावना का निर्व्यक्तिक आधार

१ उमर खय्याम की भावभूमि पर अद्वैतवा^३ का बड़ा प्रभाव है। जब वह लिखता है

The drop wept for his severance from the sea
But the sea smiled for, I am all said he
Yes God is all in all there's none besides
But one pound circling seems diversity'

तब श्रीम^३ छद्मराचाय का १^३ स्मरण हाता है

सत्यपि भेदापगम नाय तवाह न मामकीनस्त्वम ।

सामु^३हाहि तरण कवचन समद्रा न तारण ॥'

—हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ—पृ० ४२

प्रदान करने से इस काव्य में रहस्यात्मक अभिव्यक्ति का आभास अवश्य आ गया है। पर इस काव्य में आत्मोत्सव की भावना का नितान्त अभाव है क्योंकि मूलतः छायावादी कवि अहवादी है। और इस 'अह' की भावना के रहते आत्मोत्सव संभव नहीं और बिना आत्मोत्सव के (अह के पूर्ण विलय के) अध्यात्मिक मिलन सुख की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार आधुनिक छायावादी कविता के रहस्याभास को प्राचीन साधनात्मक रहस्यवाद मानना भ्रामक है।^१

अधिकारी एवं विद्वान् ऐसक के निष्कर्षों पर भी विवाद उठाये जा सकते हैं।

क जब छायावादी काव्य में रहस्याभास ही है तो 'रहस्यवाद के पीछे साधनात्मक विशपणपद लगाने की क्या आवश्यकता? क्या 'भावनात्मक रहस्यवाद किसी अंग में माय है?

ख 'अह के पूर्ण विलय से क्या तात्पर्य है? 'अहमू का यदि जीव अय है तो अद्वैतवादी दर्शनों को छोड़ कर छाप दर्शनों में पूर्ण विलय की बात ही नहीं उठती। यदि अहकार अय है तो दर्शन शब्द में पूर्ण अहता निवृत्तत्व से पृथक् नहीं। अहता की पूर्णविस्था क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सदा विवादप्रस्त रहेगा जब तक आलोचक स्वयं लय प्राप्त करके विवादातीत न हो ले।

ग कोई भी वाद अनुभूति न हो कर अभिव्यक्ति होता है तब रहस्यात्मक अभिव्यक्ति को रहस्यवाद न कहे तो क्या अनुभूति का कहेंगे? ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है मिष्टिसिद्ध के कुहासे से रहस्यवाद को हटा कर ही हिन्दी में लेना हागा। विचार या सिद्धान्त को वाद कहते हैं पर वे अभिव्यक्ति के ही आन्तरिक एवं बोद्ध पक्ष हैं।

घ 'आत्मोत्सव तो रसानुभूतिभाज की अनिवार्य शक्ति है जिसके

बिना साधारणीकरण ही पूरा नहीं होता। अतः इसका तात्पर्य फिर भी स्पष्ट नहीं। काव्य के सन्दर्भ में कवि का व्यक्तित्व कुछ सीमा तक ही प्राण होता है। फिर कवि भावानुभूतिमग्न होगा तो निश्चय ही आमात्स्य करेगा और यदि नहीं, तो रसकाव्य और रहस्यकाव्य दोनों के लिए एक-सी बात रहेगी।

इ. 'व्यक्तिगत प्रेम को निर्वैयक्तिक आधार देने की बात सत्ता और सूक्तियों पर भी लागू है या फिर आधार शून्य भ्रामक है। प्रेम तो सभी का व्यक्तिगत होगा आलम्बन ही निर्वैयक्तिक हो सकता है और 'आधार' का अर्थ 'आलम्बन' से तो खण्डन समझ में नहीं बैठता। कदाचित् कहना यह असोष्ट है कि व्यक्ति से किया हुआ प्रेम ही निर्वैयक्तिक रूप में चित्रित किया जाता है अर्थात् आलम्बन 'व्यक्ति' है पर उस समष्टि का ज्ञान पहना कर लाया जाता है। परन्तु उक्त उद्धरण के शब्द भ्रम में डाल देते हैं।

घ. 'प्रेषणीयता सर्व 'बौद्धिक' स्तर की होगी अतः शिक्षायत ध्यय है। 'रहस्यात्मक स्तर' अनुभूति का है प्रेषणीयता का नहीं। अन्यथा कबीर अपनी रहस्यानुभूति में साधारण पाठक का खींच ले आकर अद्वयानन्द-लीन कर देते फिर यह क्यों कहते कि—

'जो दीस सो तो है नाहीं है सो कहा न भाई।

अनुभूति कल्पना और बुद्धि के संचि में स हाकर अभिव्यक्ति द्वारा प्रेषणीय बनता है और सहृदय की बद्धि और कल्पना में जा कर अनुभूति रूप में द्रवता प्राप्त कर लेती है, यही रसानुभूति है। कदाचित् कहना यह है कि प्रेषणीय अनुभूति रहस्यात्मक स्तर की नहीं है।

छ. 'आध्यात्मिक मिलन-सुख सभी दर्शनों का एक नहीं है। निरपेक्ष आत्मस्वरूप या चिदानन्द क्या है इसे जहाँ दार्शनिक रूप दिया गया कि जितना और जिस प्रकार का बुद्धि के संचि में आया बसा और उतना ही सत्य मान लिया जाता है फलतः निरपेक्ष भी 'सापेक्ष' हो जाता है। ऐसी दशा में आधुनिक काव्यधारा के रहस्यवाद का जो अपना दर्शन है उसे बिना आत्मसात किए उसका बहिष्कार कर चलना विवचक दृष्टि की एक पक्षीयता अवश्य है।

३. हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र गुल जैस मनीषी भी हैं जो रहस्यवाद को एक काव्यधारा के रूप में मान्यता दते हैं। इस यदि भ्रान्ति ही मान लें तो भी अंग्रेजी के आलोचना साहित्य से विशेष सहायता नहीं मिलेगी।

१. तत्काल निवर्तितानन्दाद्यावरणाज्ञानेनात एव प्रमुष्ट-परिमित प्रमानित्वादि निजधर्मेण प्रमात्रा स्वप्रकाशताया वास्तवेन निजस्वरूपानन्देन सह गोचरी त्रियमाण रसः । —रसगङ्गाधर पृ० २६।

वहाँ भी 'रिचर्ड्स' जैसे समीक्षक शैली में रहस्यमयत्व खोजते हैं।¹ इतना ही नहीं 'ओसेफ' जेम्स ने 'दिवे ट मिस्टिसिज्म में मिस्टन' बडस बण्डस कवियों के उद्धरण दिये हैं जिन्हें 'रहस्य कवि मान लें और प्रसा' और महा देवी को फिर इसीलिए दत्कारे रहे कि वे अपन है तो अधजरतीयमाय है। अग्र जी साहित्यालोचन में भी यह ध्राति या दुविधा बराबर बनी रही है। एक निणय क रूप में कुमारी एवलिन अण्डरहिल की मायता है।

'हम प्रत्यक को जिसने पक्षिक तथा कलात्मक सहजानुभूति उस सत्य की पोलो है' मिस्टिक नहीं कह सकते जस कि हम उस सगीतज्ञ नहीं कहते जिसने पियानो बजाना सीख लिया है। सच्चा मिस्टिक' वही है जिसमें तादृश शक्तियाँ कोरी कलात्मक तथा कल्पनात्मक स्थिति को पार कर जाय और प्रतिभा की उस सीमा को आक्रान्त कर लें जिसमें प्रत्यक चेतना साधारण चेतना को शासित कर चूक और जिसने निश्चित रूप से अपने को सत्य के आनन्दमय आलिंगन में समर्पित कर दिया हो।²

इस उद्धरण से कतिपय निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

क रहस्यात्मा की अवस्था में जीवात्मा गौण होकर अपने कृतियों निधिल कर दे तभी रहस्यानुभूति का सच्चा रूप होगा और वही मिस्टिक का धरातल है।

ख रहस्यमयता का धरातल मिस्टिक' छान नहीं सकता सदा उसी में रमता है। जिसका अद्वैतत्व प्रकृत हो चका है वह भी यदि निधिल आचरण करता रहे तो तत्त्व द्रष्टा और कुतों में क्या भेद जब कि दोनों असुद्ध

1 I A Richards—The mystical elements in Shelley's poetry
The Aryan Path June 1959 P 256

2 We do not call every one who has these partial and artistic intuitions of reality a mystic any more than we call every one a musician who has learned to play the piano. The true mystic is the person in whom such powers transcend the merely artistic and visionaries stage and are exalted to the point of genius in whom the transcendental consciousness can dominate the normal consciousness and who has definitely surrendered himself to the embrace of Reality

भक्षण म लान है ? ” जाग्रत दशा म यागी का उसी प्रकार भान नहीं होता जब वह सुषुप्ति म लीन हा, क्योंकि समस्त देवत का देखता हुआ नी वह अद्वैतभाव म रहता है। इसी प्रकार जो सब कुछ करता हुआ भी निष्क्रिय हो वही आत्मन है अथ नहीं यह निश्चय है।^१

ग फिर भी कल्पना और कला म सत्य तत्त्व का क्षणिक अथवा कतिपय क्षण स्थायी प्रतीति एक पलक क रूप म उपलब्ध हो ही जानी है और वह प्रतीति अत्यरूपा होती है तब भी कल्पनामात्र एव कलामात्र क आधार पर कोई रहस्यानुभावक नहीं बन सकता। रहस्यापासक तो उस दशा म विरत ही नहीं होता जब कि कर्माकार कला से बाहर समारी हा जाता है।

घ इतना अवश्य है कि उसी परम स म की पार्थिव आभा कवि ना प्राप्त कर सकता ह।

४ इतन वमत्य क बाद आवश्यक है कि उस सक्षप म समक्ष लिया जाय। हम उक्त समस्त मतों का तीन मोट भागा म विभक्त कर सकते हैं—

क कुमारी अण्डरहिल आदि न गुड रहस्य साक्षात्कार तथा पूण तत्त्वदान का भिस्तिभिन्न माना है जती हृदय की आवरणरत्मक गठ छट जानी सभी सगुण छिन्न हा जाते समस्त कम क्षीण हा जात है क्योंकि वह परावर तत्त्व साक्षात्कृत हा जाता^२ और जीव का स्वगामित कर लता है। साधारण कवि ऐसा साक्षात्कर्त्ता नहीं हाता क्योंकि वही भाव विभाव जादि का अथवा कल्पना की मयस्थता हाती है। मध्यस्थ क हटत ही प्रतीति फिर समाप्त हो जाता और कवि की विभूति तिरोहित हाकर उस सनातन विरती बना कर रह जानी है जब उक्त प्रतीति सबेरे का स्वप्नमात्र ठहरती है—

‘गौरव था नीचे आए प्रियतम मिल्न को मरे,
मैं इठला उठा अकिचन दख ज्यो स्वप्न सगर ॥ —आमू

तत्त्व द्रष्टा का साक्षात्कार मध्यस्थ नहा चाहता साक्षात् का यही अय ही है। यहा बात आल्डम हृत्सल न कही है—

१ वेदान्तसार म उद्धृत।

२ भिद्यत हृत्प्रिय छिद्यत सब-मगया।

शास्त्रान्तधारय कर्माणि तस्मिन् द्रष्ट परावर ॥ —वेदान्तसार म उद्धृत।

‘कला अथवा प्रकृति की सौन्दर्यानुभूति नि य भूमिका की साक्षात् एव अद्वय प्रतिपत्ति की सजातीय हो सकती है परन्तु वह वही अनुभूति नहीं है, और कोई विगिष्ट सौन्दर्य-अनुभूतिगत हाकर चाहे किसी सीमा तक नि य भाव का अगत मघर्मा ठा तो भी अनेकत्र उस नि य भूमिका से पृथक ही रहता है । कवि प्रकृति प्रेमी सौन्दर्य प्रणयो जना को सत्य की वही प्रतीति प्रदत्त है जा वास्तव तत्त्व-दृष्टा को मिली हुई प्रतीतिया की कृपा से तत्सदृश होता है परन्तु क्योंकि उहाने अपन का पूण आत्माभिमानहीन (सल्फ्लेस) बनान का कष्ट नहीं उठाया है इसलिए उस नि ध्यतत्त्व-सत्य का पूणरूप म जसा कि वह वस्तुत है जानने में अयोग्य ही रह जाते हैं ।’¹

इसीलिए आचार्य अभिनवगुप्तपाद न गान्तरस के विषय म जो कुछ कहा है वह यहाँ सटीक बठ जाता है —

गान आनन्द आदि विगुद्ध धर्मों से समवेन कल्पनाजनित विषयो की रञ्जना स शून्य गुद्ध आत्मा भी गान्त का स्थायीभाव है तत्त्वज्ञान सभी अय भावा की चित्रण भित्ति है सभी स्थायियाम स्थायितम है जो रति आनि अय आठा ही स्थायी कही जाने वाली चित्तवस्तियों को अपनी अपक्षा म ध्यभिचारी कर लता है ।²

1 The experience of beauty in art or in nature may be qualitative by akin to the immediate Unitive experience of the divine ground or god head but it is not the same as that experience and the particular beauty fact experienced though partaking in some sort of divine nature is at several removed from god head The poet the nature lover the aesthete ar granted apprehensions of Reality analogaus to those Vouch safed to the selfless contemplative but because they have not troubled to make themselves perfectly selfless They are incapable of knowing the divine beauty in its fullness as it is in itself —The perennial philosophy—p 158 159

० तनात्मक जानान-दादि विगुद्ध धर्मयोगी परिकल्पित विषयोपराग रहितोत्र स्थायी तत्त्वज्ञान तु सकल भावात्तर भित्ति स्थानीय सबस्थायिम्य स्थायिनम सर्वा रत्यानिष्ठा म्थायी चित्तवृत्ती ध्यभिचारीभावयत निसगति एव सिद्धस्थायिभावम् ।
—अभिनवभारती पृ० ३३६

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि ऊपर जिन उदाहरणों का आसूँ सँदकर रहस्यवादिता की पुष्टि की गई थी व सब शृङ्गार रस के हैं अतः 'गम स्थायीभाव के न हाने से न तो गान्तरस में आयेँगे और न ही रहस्यकाव्य कहला सकेंगे क्योंकि गान्तरसकाव्य ही रहस्यकाव्य होगा और उसका आलोकन निरपेक्ष सत्य ही होगा। गान्तरस का विभाव तत्त्वज्ञान वराम्य आशयपुष्टि आदि को माना गया है।^१ कामायनी में कवि प्रसाद का यही गान्तरस है जिसके अधीन शृङ्गारादि 'अभिचारी रस' हो गये हैं। डा. रघुवीर की स्थायता को इसी रूप में समझा जा सकता है।

एक दूसरे मनोपी रहस्यवादी और मिस्टिसिज्म दोनों का काव्यधारा और काव्यप्रवृत्ति के रूप में होते हैं। जॉसेफ जेम्स जयशंकर प्रसाद और प्रभाकर माधवे इस ही मनोपी हैं। इनकी दृष्टि में काव्य का रहस्यवाद एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति है जिसके मूल में आध्यात्मिक साधना तथा विमर्शन रहा करता है परन्तु सबन कवि साधक नहीं होता तो भी काव्यरचना कर सकता है। स्पष्ट ही कुमारी अण्डरटिल और हक्सल आदि न भी ऐन कवियों की रचनाओं का आधार साधकों के ही चरम सत्य का माना है यद्यपि कविता का सत्य पूर्ण नहीं होता। महात्माजी वर्मा ऐसी ही कवयित्री हैं जो बुद्धि की ओर से अनुभूति का ओर चलती हुई अपनी विद्वत्ता का भावरूपता देती हैं। कल्पना की मध्यस्थता यहाँ अनिवार्य है। कविता तक ही यह रहस्यवादी सामिन है। कौटस का मोदय-सत्वाभेद ऐसा ही है।

य आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रिचर्ड्स से अस विचारक रहस्यवादी के शाली रूप में भाव्य उद्घाटते हैं जसा कि आगे आयेँगे। शुक्ल जी अत्यन्त-समा साक्ति अलंकारों में विभक्त कर स्पष्ट ही शाली से पृथक् रहा माना है और रिचर्ड्स से शाली के काव्य में 'मिस्टिक तत्त्व खोजत है जा रूपारम्भ है अत्र शालीमान है।

५ हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि हिन्दी का रहस्यवादी वाद का अर्थों के लिए ही पर्याप्त हो पाता है। प्रथम अर्थ के लिए 'रहस्यानुभूति रहस्योपासना' रहस्यसाधना जस शब्द लन चाहिए। था जयदेवसिंह जी की अर्थों का कारण यही है कि रहस्यवादी समूह मिस्टिसिज्म का अर्थ समा विष्ट नहीं कर पाता। हिन्दी में प्रचलित यह शब्द अब अपने का स्वतन्त्र ही रखे तभी ठीक है। अन्वया वमर्थों का अर्थ न होगा।

ऐसी स्थिति में कुछ भाव धारणाओं से बच रहना आवश्यक है।

१ एक अतिवादी यह है कि जो महात्मा परमत्व का साक्षात्कार करते हैं उन ही अभिप्रेरणा से ही अनभूति से आती है उमम कल्पना भावना और बुद्धि का योग नहीं होता। यह धारणा अनुभूति पर बल देकर सच्ची रहस्यानुभूति का सम्यक् म सहायक है पर अतिरञ्जना से दूषित भी है। कोई भी अभिप्रेरणा परावाणी से सीधे नहीं आ जाती। उसे बीच की सीढ़ियाँ पार करनी ही होती हैं। सनाथना द्वारा सम्मान में बुद्धि का बहुत बड़ा योग है। जिन्होंने साक्षात्कार नहीं किया है वे बुद्धि से ही सम्यक् हैं अतएव यह अलंकारिक गली अपनाई जाती है।

२ दूसरा घातक अतिवादी यह भी है कि आधुनिक कविता का रहस्यवाद शुद्ध रहस्यानुभूति की धारा में आता है। उसे उपनिषद् के तत्त्वज्ञान के साथ एक ही शृङ्खला में गिन लेना सवया भ्रमक है। ऐसी दृष्टि में कबीर दादू आदि साधकों की वाणी और महादेवी आदि की रचनाओं का एक ही ढंग में गिन लेना सवया विचित्र रहा है। साधनात्मक और भावात्मक दो रूपों में विभक्त कर आचार्य गुल न ठीक ही किया है परंतु उनका बल भावात्मक पर विद्यमान है क्योंकि गली सौम्य के रूप में ही वे रहस्यवाद की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं।

३ एक भ्रान्ति उक्त दानों अतिवादी की मध्यस्थता करते समय यह ही सकती है कि जब मृत की वाणी भी कल्पना साधक हैं तो साधारण रहस्य कवि से साधक कवि में अन्तर ही क्या रहा? जिस प्रकार अवतारवाद के अनुसार साधारण प्राणी के अधीन जन्म मरण लता है पर ईश्वर स्वेच्छा से माया की परिच्छिन्न बनाकर आ जाता है उसी प्रकार महात्मा कवि कल्पना का स्वच्छा से अपनाता है पर कवि मात्र कल्पना के सिवा अनुभूति का अर्थ आधार ही नहीं पा सकता और पामर जन मात्र बना रह जाता है।

४ ऐतिहासिक अध्ययन करते समय उपनिषदों की धारा में आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों का गिन लेना तो ठीक है पर कवि के स्वरूप को जाने बिना सामयिक रूप वही कितना है परन्तु बिना और जीव जगत सम्बन्धी दृष्टान्तों पर अतिरञ्जित किये बिना मयका समान रूप से रहस्यवादी कहना भ्रान्ति है।

५ सीमा से दय का ही विस्तार देकर असीम मान लेना एक बात है और सीमा से दय में असीम से दय ही का साक्षात् करना दूसरी बात।

प्रथम प्रकार की धारणा आसू म प्रसाद की है, अतः वह रहस्य काव्य नहीं है परन्तु दूसरी धारणा जायसो की है, अतः पद्यावन रहस्य काव्य है। हम अपने चरम की महत्व दकर असीम अनुभव करें ता रहस्य-साधना न होगी पर मूर्ति म परम तत्त्व की उपासना रहस्य-साधना रहा है क्योंकि उसम असीम का साक्षात् भाग्य रहा है। इस अन्तर क मित जान पर मूर्ति-भूजा ग्यय है और चरमे के प्रति आसक्ति उपयोगी परन्तु यह उपयोगितावाद रहस्यवाद से दूर ही है।

६ काव्य म रहस्यवाद का काव्य शास्त्रीय सोमाआ म न देख कर पूणत दान की परिधि मे खीचना असगत है पर दानिक आधार की धस्वीकृति व्यामोह है। इन दानों से हमारी रणा होना चाहिए।

७ कुमारी अण्डरहिल का Surrendered himself और हुक्ले का 'Perfectly selfless' का अर्थ दते हैं आत्मासग अथवा अह के विलय का वही अर्थ भारतीय चिन्ताधारा म माय नहा हो सकता क्योंकि self का वहाँ (lower self) अर्थ है जो सञ्चित 'स्व' ता कहा जा सकता है पर उक्त भारतीय दान क गान अनदित रूप म आकर अध्ययन परम्परा की दूषित करत है। खेद है, पश्चिम के विचारका का अनुवाद मात्र हमारा समीक्षक दता है।

८ साधारण कविता की रहस्य मूलक भावानुमति रागजनित होती है अतः उमे सवथा गान्त रस क उपयुक्त तत्त्व जान नही मान सकते। जब रहस्यवादी सब काव्या म हम वसा साजने लगत हैं ता भाति ही हाथ लगती है।

रहस्यवाद परम्परागत काव्य धारा का नया नाम

यदि ध्वनि मिढान्म और रस सिद्धांत की दृष्टि क काव्य शास्त्रीय समीक्षा की जाय ता इस रहस्यवादी काव्य धारा के बीज श्रुत से अब तक क काव्यों म बिखरे मिल जायेंगे। धातरम का गम स्थायी भाव तत्त्व जान मात्र है जो रागमयी आसन्निया क काव्यगत भाव का आधार होकर भी उनसे भिन्न है और रहस्यवादी काव्य अपने भाव पक्ष में इससे महत्वपूर्ण व्याख्या नहीं पा सकता।

शान्तरस की कविता स्फुट रूप में ही उपलब्ध होती रही है, अतः भक्तिकाल के सन्तों और सूफियों के साहित्य की एक लम्बी धारा देखकर सामान्य काव्य से उसे पथक देखा जाने को हुआ तो अग्रजी के मिस्टिसिज्म में सहायता दी और 'रहस्यवाद' का नाम दे दिया। जब हिन्दी के आधुनिक काल के आरम्भ में भारतीय शास्त्र-चिन्ता का अभाव ही गौरव का कारण माना गया था तब इससे अच्छा समाधान भी सुलभ न था। आज इस शब्द को इसलिए भी भाव्य ठहराया है कि शब्द प्रचलित हुआ गया है इसलिए भी कि शान्तरस एक धारा तथा प्रवृत्ति का बोधक नहीं है और इसलिए भी कि काव्य साहित्य की एक धारा का समग्र भाव से अध्ययन एक शीघ्र कर्म अन्तर्गत सुगम कर लिया गया है। फिर प्रवृत्तिमात्र में शास्त्र रस नहीं है अतः रहस्यवाद का शब्द व्यापक भी हुआ गया है—गली भी उसी में समाविष्ट है।

सूफियों के प्रेम तत्व को रागात्मक मानकर भी शान्तरस के प्रेम से उसे पृथक नहीं कर सकते। वह राग प्रेम का अग्रभूत है जसा कि देख चुके हैं कि अभिनव गुप्तपाद के अनुसार शास्त्र के प्रवृत्ति अर्थ रसों को सञ्चारी कर लिया जाता है। सूफियों का साध्य जो हकीकत की दशा है वह अभिनव के 'तत्त्वज्ञान' अथवा आज के अति प्रचलित (किन्तु पुरातन) सत्यापलब्धि का ही पर्याय है। प्रेम अथवा इशक की चरम परिणति बसाल की अवस्था है जो प्रेमदशा अथवा विश्रान्ति अथवा शास्त्र दशा से पृथक नहीं है। अतः रागतत्व को किसी प्रकार लौकिक मान कर सूफी प्रेम की ओर तत्सम्बन्धी रहस्यवाद की व्याख्या संभव नहीं।

आज तक के जीवन विकास के साथ जो विविध दशानो तथा जावन दशानो की प्रतिष्ठा हुई उनके द्वारा प्रतिपादित अधिष्ठान तत्त्व एक होत हुए विविध रूपों में आया है यही भारतीय विविधता रही है। इस एक पर बहु-रूप अधिष्ठान तत्त्व को आलम्बन बनाकर रचे हुए साहित्य का अध्ययन 'रहस्यवाद' शीघ्र कर्म अन्तर्गत इस पुस्तक का उद्देश्य है।



रहस्य का दार्शनिक पक्ष

सब कहते हैं 'खोलो-खोलो
छवि दसूँगा जीवन घन की,
आवरण स्वयं बनते जात
है मोड़ लग रही दगन की । —प्रसाद^१

अध्यात्मविद्या और रहस्य

जीवन और जात का अविच्छान मूल तत्त्व रहस्य है—निगूढ है वह
एसा सत्य है जो निरपगत है पर उसका मख हिरण्य क पात्र स डका है
जिम 'अपात्रन किए जिना सत्यकाम मनापा का दशन नहा हा सकते ।^१ जगत
की चकाचीच उम छिपाय रहती है । जिस प्रकार मूय का प्रकाशपुञ्ज ही हम
दख पात है, उम प्रकाश का छान स्वत मूय क्या कसा हागा, हमस अनात
रह जाना है उसी प्रकार जगत भी अपन कारणभूत सत्य को अपन म अन्तहित
किय रहना है फलत दष्टि उम कारण तत्व पर पहुचता ही नहीं और जितना
जगत से परे परमतत्व है उम जगत की मिटटी म पत्ता जीव उसी मिटटी की
आँवा से कम देख सकला है । उमकी सभी कुर्लाचें ब्रह्माण्डों की परिधि म हैं,
जिसक रोम राम म कोटि काटि ब्रह्माण्ड राजते हैं उस वह नहीं जान पाता ।

१ कामायनी—काममग ।

२ हिरण्यपन पात्रण सत्यस्यापिहित्त्र मुग्धम् ।

तत्त्व पूषन् अपात्रणु सत्यकामाय दृश्य ॥

गुलाब के मूल का सी-दय वास और आकार वभव हम अपनी ओर खींचकर इतना विभोर कर लेता है कि उसी मे निहित उस क रहस्य भूत कारण मत्तिका का हम नही पहचान पाते । एक छोटे से वाज म पिप्पलवृक्ष की समस्त यहता और उसी से बढन वाली तरुस-तति निहित है यह भी हमे सामान्यत ज्ञान नही हो पाता । तब फिर परमकारण तत्व का—उस महा सागर को—जिसकी तरगा के कणमात्र हम है कस समझ पायेंगे जब तक कायश्रद्धाला का निपघ करत करत उस मूलकारण तक न जा पहुचे जिसक आगे राह नही ।

यही नेति की प्रक्रिया है । जब तब यह न कह कि शुक्ल नील पीत कुछ नही है, केवल सूय विरणो का विसय याग मात्र है तब तक कायभूत रगों की चकाचौंध ही हाथ लगगी वचानिक तथ्य आक्षल रहगा । अध्यात्मविद्या की 'नति नति एसी ही प्रणाली है । काय की सत्ता का निपघ करत करत जब मूल कारणभूत सत्य की सत्ता पर पहुच जात हैं तब निपघ की आवश्यकता नही रहती । उस दगा म भाषा अपना रूप बदल देता है और निपघमूलक विधि द्वारा उस तत्व की प्रतीति कराती है— न वहाँ सूय चमकता है न चाँद तारे बिजलियाँ नही चमकती आग कहा उसी चमकत हुए के पीछे सब चमकते हैं उसी की काति स यह सब कुछ विरोध काति-पील है ।^१ कायों का निपघ द्वारा और कारणसत्ता का विधि द्वारा प्रतिपादन अध्यात्म वाक्यों की विगपता है । विधि निवेध (Positive negative) क विरोधो म म बधी वाणी का उद्गम अध्यात्मविद्या ही रही है— वह कम्पनधर्मा है, वह कम्पनधर्मा नही वह दूर है वह समीप है ।^२ 'अणु स अणुतर, महत स महतर^३ उसी सत्ता की सत्यरूप म प्रनिष्ठा का मापनिष्ठ युग ही हमारा सत्ययुग रहा है । गोस्वामी तुलसीदास ठीक ासी औपनिपद तत्व के रूप म सीन्दय सत्ता का अङ्कन करते हैं—

' सुन्दरता कह सुन्दर करई । छवि गह दीप सिखा जनु बरइ ॥

जेहि जाने जगु जाँ हराई । जाग जया सपन भ्रमु जाई ॥

१ न तत्र सूर्यो भाति न चद्रतारक नमा विद्यतो भान्ति कुतोऽप्यमग्नि तमेव भातमनुभानि सध तस्य भासा सवामिद विभाति ॥

२ तदेजनि तपेजति, तददूरे तददृशितक ॥

३ अणोरणोमान महता मदीयान ॥

यही अध्यात्मविद्या का सर्वज्ञान 'उपनिषद्' का प्रतिपाद्य है। उपनिषद् वास्तव अध्यात्मविद्या का ग्रन्थ है। 'सद् धातु का अर्थ मति तथा अवसादन (दूरीकरण) है 'उप' और 'नि' उपसर्ग हैं। इस प्रकार तत्त्वज्ञान के लिए 'उपनिषद्' अर्थ कई प्रकार से किया जाता है।

१ भगवान् ऋद्धराचार्य के अनुसार— श्रद्धाभक्तिपूर्वक जा आत्मसात करके इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं तबक गम ज्ञम-जरा राग आदि अनर्थ पुत्र का विनाश करनी है अथवा परब्रह्म का प्राप्न कराता है अविद्या आदि ससार-कारण को अत्यन्त अवसान करती है विनष्ट करती है। इस लिए उपनिषद् है क्याकि उप+नि पूर्वक सद् धातु का ऐसा हा अर्थ स्मृति वारों को मन्थ है।^१ (उप = समापगमन, नि+तिगतन या विनाश, सद् = प्राप्ति तथा अवसान—पदल विगरण-मत्पदमाप्नपु।)^२

२ मह उपनिषद् इसलिए है कि उस आत्मतत्त्व के समीप पहुँचा कर, जो द्वैतगुण अद्वय ब्रह्म है, द्वैतजन्य अविद्या का नाश करनी है।^३

३ 'अथवा इसलिए उपनिषद् है कि अनघमूल अविद्या का नाश करती है तथा प्रत्यगात्मा के रूप में सबके अनुस्यूत उस परमतत्त्व के पास पहुँचाती है जो सभी भयों-विराधा-द्वन्द्वों से परे है।^४

४ विद्या इसलिए उपनिषद् है क्योंकि वह मूलाच्छन्करी ज्ञान से समस्त जागतिक प्रवृत्तियों के कारणों का नाश करती है।^५

१ यन्मां ब्रह्मविद्याम उपयन्ति आत्मभावन श्रद्धाभक्तिपुर सर सत तथा गम-ज्ञम जरा रागाद्यनघपूग निगानयाति पर वा ब्रह्म गमयति, अविद्यादि-समार कारण वात्यन्तम् अवसादयति विनाशयति इत्युपनिषद्-उप नि पूर्वस्य सद् एवमपस्मरणात् ॥ —आप्तेवृत्त शब्दवाच्य म उद्धृत ॥

२ पाणिनिधातुपाठः ।

३ तपनीय त्सात्मानं ब्रह्मापात्नादय यतः ।

निहृत्पविद्या तज्जा च तस्मानुपनिषद् भवत ॥—उक्त शब्दवाच्य म उद्धरण

४ निहृत्पनघमूल स्वविद्या प्रत्यक्षमा परमः ।

मयत्पाम्ना-मभम् अतावापनिषद् भवत ॥—बह्म

५ प्रवृत्तिहृतुन् नि शयान सम्मूलाच्छन्कस्त्वतः ।

यनी-वमाद्य विद्या तस्मानुपनिषद् भवत ॥—बह्म

यही ब्रह्मविद्या, अध्यात्मविद्या तत्त्वज्ञान अथवा उपनिषद् आगे चल कर 'रहस्य कहलाया। गीता में उत्तम रहस्य कहकर उसी का उपाग हुआ है^१ और ब्रह्मसूत्र इसी का प्रतिपादन करते हैं।

रहस्य और दशन

'दशन शब्द तत्त्वज्ञान जडचतनविवेक प्रकृति-पश्य विवेक अथवा साक्षात्कार' का ही अर्थ देता है। शङ्कराचार्य द्रष्टामात्रको आत्मतत्त्व और दृश्यमात्र को अनात्मतत्त्व मानते हुए^२ दृश्य के निषेध द्वारा-अज्ञान द्वारा-दृष्टा का समझन की य वस्था दी है। गायत्र्यास्त्र में सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निश्चयस कपान का कथन है^३। साख्यशास्त्र पुरुष को दृष्टा मानता है^४ और प्रकृति दृश्य होती है जो देखी जाने पर पुन दशन नहीं देती^५ अत यही विवेक ख्याति दशन है।^६ सभी प्रकार के योग साक्षात्कार पर बल दते हैं। प्रक्रिया में ही अंतर है 'समाधि साक्षात्कार दशा का ही नाम है। बौद्धधर्म में विज्ञान ही निर पक्ष पदार्थ है जो धारा प्रवाह रूप में जगत जीव जीवन आदि रूपों में बदलता रहता है। अत विज्ञान के शुद्ध रूप में जानावस्था में-रहना ही निर्वाण होगा जो आंतरिक दशन से अभिन्न है। अत दशन अध्यात्मविद्या से मूलत अभिन्न है।

हमारा दशन फिलासफी के समान ज्ञान का प्रम मात्र नहीं है^७ और

- १ भवताऽसि मेसखावति रहस्य ह्य यत्तुत्तमम् ॥ —श्रीमद्भगवद्गीता ॥
- २ दृश्य सवमनात्मव दृग्वारमा विवेकिन ॥—आत्मानात्मविवेक
- ३ न्यायसूत्र १ १ १ ॥
- ४ तस्माच्च विपर्यासात् सिद्ध साक्षित्वमस्य पुरुषस्य ।
कवत्य भाध्यस्य द्रष्टृत्वमकत भावच ॥ —सांख्यकारिका १९
- ५ प्रकृते मुकुमारतरो न विविदस्तीनिम मानिर्भवाति ।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दशनमुपनि पुरुषस्य ॥ वही ६१ ॥
- ६ प्रकृति पश्यति पुरुष प्रसक्तवदवस्थित स्वस्य ॥
दृष्टा मयेत्युपेक्षक एवो दृष्टाहमित्युपरमत्यया । वही ६५-६६ ॥
- 7 Gr philosophia lit love of wisdom from philo love and sophia-wisdom
—A nandale Dictionary

न ही 'मेटाफिजिक्स' के समान 'प्रकृति से परे पदार्थों का विज्ञान' मात्र है^१ प्रत्युत अन्तः साक्षात्कार है सर्वांगपूर्ण प्रत्यय है। इतना होते हुए भी शुद्ध अध्यात्मविद्या से दशम में 'यावहारिक अन्तर है—

१ उपनिषदों में तत्त्वज्ञान प्रमुख है जब कि दशमों में तत्सम्बन्धी पद्धति एवं विवेचना प्रधान है।

२ बौद्धिक विद्वचना के कारण पारिभाषिक शब्दावली में बाधकर पुर स्थापन का चपटा दशम में की जाती है जबकि उपनिषद परमतत्त्व के साक्षात्कार का अनुभूति प्रधान निरूपण करत हैं।

३ बुद्धिभेद से निरूपण का भेद दशमों की विशेषता है जब कि उपनिषद में अनुभूति की भूमि का अन्तर भले ही विवेचित हो पर स्मूल तक के आधार पर निरूपण नहीं है प्रत्युत तक का विषय है।^२

४ वस्तुस्थित यह है कि उपनिषद—प्रतिपाद्य तत्व को ही विविध दशमों में विविध रूपों में देखा और लिखाया है अतः उपनिषद आधार हैं।

५ उपनिषदों में अनुभूति प्रधान है जब कि दशमों के पदाय विभाग अर्थात् बुद्धिप्रधान व्यवहार ले वश हैं और आज के वैज्ञानिक युग में तो दशमों का ताकिकता ही हाथ लगी रह गई है।

६ उपनिषदों का काय—पक्ष आज भी अव्याहत है पर दशमों का आज विचार-भंग महत्व हो शय रह गया है।

इन अन्तरों से स्पष्ट है कि रहस्य प्रतिपादन दशमों द्वारा बौद्धिक धरातल पर किया जाना लगा जा वस्तुतः अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक भी हो गया था। जिन भावों में गन्तव्य या चित्रमयी भाषा में उपनिषदों की रचना हुई है उसकी पारिभाषिक व्याख्या दशमों द्वारा ही सम्भव हो सकी है, क्योंकि दशमों की भाषा चित्रात्मक (Pictorial) न होकर बौद्धिक (intellectual) होती है जो सब वक्ष बनाई जा सकती है। दशमों का प्रसार-प्रचार सत्ययुग का वस्तु नहीं जब साक्षात्कृत सत्य किसी भी शब्द—प्राण, आत्मा, आनन्द ब्रह्म

१ Gr meta—after and physical physics from physis nature or Science of natural bodies —Annaudale dictionary

२ नया तर्कण मतिरापनेया।

द्वारा अनुभूति गम्य कर लिया जाता था। दशन तो घम अथ कामरूप भता कं युग की वस्तु हैं जब उक्त भता म व्यग्रमातवता को परम पुरुषार्थ का माग बताना आवश्यक हो गया होगा। द्वापर अथवा सन्देश के युग में जब अमृत्यु और निश्रयस के प्रतिपादन का बीड़ा भी दगनो न उठाया।^१ इहा सब कारणों से दगन का 'श्रुति विगेष श्रुतिकान विगेष' सिद्धान्त विगेष यहाँ तक कि विचार विगेष तक अथ हो चला है।

साक्षात्कृत रहस्य भसा की बुद्धिगम्य बनाने में आज दगनो का विगेष हाथ है अतएव अर्ध्यात्मविद्या यन् साधना है तो दगन आज कोरे अध्ययन बनकर रह गये है।

दर्शन भेद से रहस्य के व्याख्या भेद

एक सत को विप्र विविध प्रकार से कहने है^२ यह उक्ति दगनो की व्याख्या पर विगेष लागू है। जिस प्रकार अखिल जगत्—कहा उसे जड या चतन^३—अपन विश्वरूप में एक होकर भी विरिष्ट दृष्टि से त्रिविधता लेता है उमी प्रकार एक ही रहस्य सत्ता अनक बुद्धि भदा की व्याख्या पाकर अनेकत्व से घटता है। ऐसी स्थिति में यह नहीं कह सकते कि सभी दगना की धोड़ तथा वाचिक उपलक्ष एक ही है। इस अनकता का कारण उपलक्षिया का मौलिक अन्तर भी है। हम दगनो को भारतीय सदर्भ में देखें तो दा स्यूल वग हा जायेंगे —

१ प्रत्यक्ष रहस्य-दर्शन आर

२ परोक्ष रहस्य-दर्शन।

त्रितीय वग में व दगन आत हैं जा पदाय विभाग तो अपन ढग स प्रस्तुत कर दत हैं परंतु दिव्य अनुभूति कादावा अ म दगनों के आधान ही मानत हैं—एक दगना में याय-व्यापिक मुख्य है। मामांसा और सात्य भा प्रमग कमकाण्ड और विवक द्वारा वान्त और योग क साधक हैं अत परोक्ष वग में हा आन है। यहाँ यह हा सकता है कि 'परोक्ष रहस्य-दर्शन वग में लाय हुए दगन भी अपनी साधना प्रणाली द्वारा प्रत्यक्ष दगन का काम

१ यथाऽमृत्यु निश्रयस सिद्धि सधम

२ एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति ॥

३ कामायनी—चिन्तासग ॥

करते हा परन्तु आमाय जन म ये दान आज बुद्धिवाद की सीमा म ही आते हैं—जो तक उपलब्धि का प्रश्न है परन्तु 'योग और वेदान केवल बौद्ध-ध्यायामात्र नहीं है क्योंकि उनम वर्णित समाधि मुक्ति आदि कारी बुद्धि विजम्भणा नहा हैं क्योंकि हैं—प्रथम दान की वस्तु हैं । प्रत्यक्ष रहस्य-दान बहुत है, जिनम स कुछ का विवरण सभ्य म दिया जाता है —

१ वेदान्त-वेदान्त शास्त्र का यो ता अर्थ 'उपनिषद् ग्रन्थ' अथवा उपनिषद् का प्रतिपाद्य है वेद का अंतिम अर्थ का नाम वेदान्त है परन्तु आज इसका अर्थ गान्धर्व अद्वैतवाद लिया जाता है । अद्वैत नाम द्वैत का विरोध पर रखी गया है । प्राय मभी दानना म आत्मतत्त्व का एकत्व अमाय है अत यह द्वैत बहुत्व का अर्थ भी जाता है जिस वर्जित कर एक ही चेतना की स्थापना वेदान्त का प्रतिपाद्य रहा है । चेतना विज्ञानरूप, सत्यरूप और आनन्दरूप है, वही ब्रह्म है जो जगत्कारण है ।

वेदान्त में 'वैश्वानर एकत्ववाद' को ऐतिहासिक रूप म समर्थन के लिए बौद्ध-दान के विज्ञानगत बहुत्ववाद का जान लना आवश्यक है । बौद्ध-दान में विज्ञान ही चरम तत्व है, जिसको तस्या अनन्त है । यह सत्कार विज्ञान सन्तान या श्रुतीनि धारा का देन है । जिस प्रकार जल बिन्दु अनन्त हैं जो पृथक् रहते हुए भी भ्रमण एक धारा मान लिए जाते हैं उसी प्रकार श्रुतीनि धारा की अनन्त धारा एक जान पड़ती और पचाय अलण्ड रूप म मासित होते हैं । यह एसा दान है जो क्षणिकता अभावमयता पर बल देकर चलता है । इसके विपरीत वेदान्त विज्ञान का अलण्ड अपरिच्छिन्न, अद्वय मानकर जगत का उसी का विवत—अतात्त्विक अयथाभाव—मानता है ।

लण्डन विरहित प्रत्यक्ष का कारण अज्ञान या माया है जो भाव रूप (Positive) अनिर्वचनीय तत्व है । इस माया का सत् नहीं कह सकते क्योंकि ब्रह्म कहते उसकी प्रतीति हाती है अपन आप म वह प्रतीतिगत हा ही नहीं सकता । इस असत् भी नहीं कह सकते, क्योंकि प्रतीति तो हाता हा है अत अनिर्वचनाय है । वस्तु की सत्ता म मासित हान वाला छाया का समान ही माया का सत्त है भी नहीं भी है । चतन्य तत्व असीम सत्ता एक हाकर भी सासित तथा अनन्त रूप लता है यही माया का काय है, परन्तु माया

१ सत्य ज्ञानमानन्द ब्रह्म ।

२ अतत्त्वनाम्नया प्रया विवत इत्युच्यते ।

की मूढम वृत्ति तक के हटा देने पर मुक्त दशा प्राप्त हो जाती है तब जीव ब्रह्म का अन्तर मिट जाता है । जसा कि कहा है —

जल म कुम्भ कभ मे जल है भीतर बाहेर पानी
पूट कभ, जल जलहि समाना, यहु तत कथहु गियानी ।

२ शय दान — यह दान वेदान्त के मायावाद का तथा जगत के स्वप्नवत् होने का नहीं मानता । इसमें जगत और जीवन को शाश्वत माना गया है क्योंकि व चित्त के ही स्वरूप हैं—भले ही सकुचित रूप हैं । परम गिव ही गिव और गक्ति दा म बट जाता है । गक्ति के गान इच्छा और क्रिया ये तीन रूप होते हैं, जो गिवनत्व के सम्पक् स तीन रूप लते हैं—सदागिव इश्वर और शुद्धविद्या । परमगिव ही महाचिति है जो अपने ही आनन्द स्वरूप स उच्छलित गक्ति^१ द्वारा अपने आप ही विश्व का उमीलन करती है ।^२ इसक अनन्तर शक्ति का और सकाच होता है जो माया कहा जाता है माया का काय अभेद म भेद बुद्धि उत्पन्न करना है जिसस महाचिति अणुचिति म बटी सी भासित हाती है । इस प्रकार माया और अणु या जीव की रचना हो जाती है । यह अणु चित्त क असीम रूप स अपने का पृथक् करता है । क्योंकि परमगिव की पाँच गक्तियाँ—सकत त्व सधनत्व पूणत्व नित्यत्व और व्यापकत्व—सकुचित होकर अणु को आवत कर लती हैं । य सकुचित गक्तियाँ प्रमग कला विद्या (अविद्या) राग काल और नियति कहलाती हैं ।^३ य ही पाँच जीव क कञ्चुक हैं जिह लपेटे रहन स बहनि । साम परमानन्द स्वरूप को भूला रहता है —

सकुचित असीम अमोघ गक्ति
जीवन को बाधामय पथ पर ल चल भे स भरी भक्ति
या कभी अपूण अहना म हो रागमयी सी महासक्ति

१ आनन्दाच्छलिना शक्ति मृजत्यात्मात्मना ।

२ चित्त स्वप्नत्रा विवसिद्धिहृत् — स्वच्छया स्वभिन्ती विश्व-
मुमीलयति—प्रत्यभिगा—हृत्पम ।

सकत त्व—सकतत्व—पूणत्व—नित्यत्व—व्यापकत्व—गवनय सकीर्ष
गन्दाना यथाक्रम कला विद्या राग काल नियतिरूपतया भासति ।—वृत्ति ९

‘यापकना नियति प्ररणा वन अपनी मामा म रहे बन्द
सवज्ञ पान का क्षद्र अग विद्या वनकर कुछ रचे छन्द
कत त्व सफल बनकर आवे नदवर छाया-सी ललित कला
नित्यता विनाजित हो पल-पल मे काल निरन्तर चल डला । १

इसके अनन्तर और भी सकोच चलता है तो सांख्य के २४ तत्त्व बनते हैं । तीनों दार्शनियों का सत्त्वादिसाम्य-दृशा का सकोच प्रकृति या चित्त रजो-गुणी इच्छा का सकोच अहंकार सत्त्वागुणी पान का सकोच बुद्धि और तमा-गुणी क्रिया का सकोच मन इन अन्त करणा का रचना हाता है । फिर सकोच होते होते पाँच पाँच ज्ञानन्द्रिय कर्मेन्द्रिय, विषय (सूक्ष्मभूत और महाभूत) बनते हैं । इस उत्तरोत्तर सकोच द्वारा सृष्टि होती है^२ अतः परमनिव रूप लाभ करने के लिए जीव का विकास के लिए यत्नगाल हाता पड़ता है ।^३ यत्न रहित यथा सकोच स्वभाव वाल जीव की स्थिति ऐसी है —

कहा मनु ने—नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय
एक उल्का-सा जलता मात क्षय म फिरता हू असहाय ।
दौल निम्नर न बना हतभाग्य, गल नही सका जाकि हिम खण्ड
दौडकर मिला न जल निधि अङ्कु आह वसा ही हू पाखण्ड ।
पट्टेली सा जीवन है व्यस्त उसे गुलझाने का अभिमान,
घताता है विस्मृति का माग चल रहा हू बनकर अनजान ।
भूलता ही जाता दिनरात सजल अभिलाषा कलित अतीत,
बड रहा निमिर गर्भ म नित्य दीत जीवन का मयोन ।
क्या कहू क्या हू मैं उदभान्त ? विवर म नील गगन क आज
घायु की भटकी एक तरग क्षयता का उजडा-सा राज ।
एक विस्मृति का स्तूप अचेत, ज्याति का घ घला-सा प्रतिविम्ब
और जडता की जीवन-रागि सफलता का सकलित विलम्ब ।^४

१ कामाधनी—इडासग ॥

२ छतीसो तत्त्वा के लिए ‘पट्टिगततत्त्वमभोह’ देखिए ।

३ मध्य विज्ञानात चिन्तन-दलाभ । मध्यभूतों सदिग्ध भगवती ।

—प्रत्यभिज्ञा हृदयम्—१७ ॥

४ कामाधनी—इडासग ॥

३ भक्ति-दशन—विशिष्टाद तवाद शुद्धा तवाद द्व ताद तवान्, द्व तवाद आदि विविध भक्तिदशन कुछ बातों में समान हैं अतएव एक वग में रख लिये गये हैं । (१) जीव और जगत को सभी नित्य मानते हैं । (२) सभी की धारणा है कि जीव अल्पज है और ब्रह्म सर्वज । (३) माया जो ब्रह्म की सहचरी है, जीव को पृथक् रखती है (४) ईश्वर सर्वशक्तिमान है अनुग्रह शील है फिर भी, जीव जब तक उस ओर उन्मुख नहीं होता तब तक वह भी उदासीन रहता है । (५) परतु गणनागत जीव को भगवान का अनुग्रह तुरन्त मुलभ होता है जिससे माया माहित जीव विस्तार या मोह या जाता है । इन सभी प्रवृत्तियों का निदर्शन कराते हुए गौस्वामी जी ने हनुमान् और राम के सम्बन्ध की प्रतिष्ठा की है—

मोर चाउ में पूछा साइ । तुम्ह वस पूछह नर की नाइ ॥
 तव माया बस फिरौ भूलाना । ताते मइ प्रभ नहि पहिचाना ॥
 एकु म द में मोह बस कुटिल हृदय अजान ।
 पुनि प्रभु मोहि विसारेउ दीन ब धु भगवान ॥
 जदपि नाथ बह्व अवगुन मार । सबक प्रभहि पर जनि भारे ॥
 नाथ जीव तव माया माहा । सा निम्तर तुम्हारीहि छोहा ॥

जीव और ब्रह्म के सम्बन्ध निर्धारित करके ही भक्तिभाव समभव है । सध्य सबकभाव पति पत्नीभाव पिता पुत्रभाव सस्य अति प्रचलित हैं परन्तु यथारुचि अन्य सम्बन्ध भी बन सकते हैं । अद्व तवाद भी भक्ति के क्षेत्र में धाकर सम्बन्ध का मायता देता है । कम-से कम अगांगिभाव ता रहता ही है जब शक्य कहते हैं —

‘भेद हट जाने पर भी हे नाथ । मैं तरा हूँ तू मेरा नहीं क्योंकि समुद्र का तरंग हाता है कही तरंग का समुद्र नहीं ।’

यही प्रवृत्ति श्रीमती महात्मा की बर्मा में देखी जा सकती है —

नहीं अब गाया जाता देव । धरती उँगली है डींग तार ।
 विश्व-बीणा में अपनी आज मिला लो यह धरपुट भकार ॥’

१ सत्यपि भगवन्नाम नाथ । तवाह न मामकीनस्त्वम ।
 सामुद्रा हि तरंग वचन समुद्रा न तारग ॥

साम्प्रत उद्योग ने पूर्ण अभेद प्राप्त करके भी जीव को 'तन' और ब्रह्म को 'जान' का रूप दिया है ।

श्री मयिलीकरण गुप्त श्राद्धुनिक काल म भक्ति काव्य का प्रतिनिधित्व दन बाल छडी वाली हिंदी क कवि हैं उन्हाने जीव का ससार रूपी महा सागर की भटकी तरंग के रूपक मे चित्रित किया है—

'उठ अवार न पार जाकर जो गई

ऊर्मि हू मैं इस भवाणव की नई ।

अटक जीवन क विनाप विचार म

भ्रमकती फिरती स्वय मज्ञाघार म

सहज कयण कल कुञ्ज बछार म

विषमता है किन्तु वायु विकार म

और चारा और हैं चक्कर कई

ऊर्मि हू मैं इस भवाणव की नई ।

पर विलीन नहीं रहू गति-हीन मैं

क्षय से न दबू बसो, वह दीन मैं

अति अवाग हू किन्तु आत्म-अघान मैं

ससि मिलन क पूव ही प्रिय लीन मैं

कर सवा सा कर चुका अपना दई

ऊर्मि हू मैं इस भवाणव की नई । १

४ बौद्ध-ज्ञान—बौद्ध-ज्ञान साधना के क्षेत्र म परमात्मा जसो किसी सत्ता की भाव्य नहीं ठहराता और बौद्धिक अतिचार की प्रतिक्रिया म उसन प्रसार पाया अतएव नाम्तिक्त ददान कहा जाता है । नित्य आत्मसत्ता भी— प्रतीति धारा स पृथक्—उस अपकित नही । प्रत्यय या विज्ञान को ही सवम्ब मानने के कारण उसको साधना-पद्धति पूर्णतया मानसिक अथवा मनो वैज्ञानिक है । यही कारण है कि वहाँ मन की निदचलता पर बडा बल दिया गया है और आत्म के समान उसे सहज एव समरस बना लेने को

१ मन तू गुणम् तू मनु गुणी मन तन गुणम् तू जा गुण ।

ता कय न गायत् वात् अज इ मनु दीगरम् तू दीगरी ॥

२ सावत नवमसग ॥

महत्त्व दिया गया है।^१ सहज उल्लास या उल्लाल के लिए सरहपा न बालवत स्थिति का अरिवाय बतलाया है और गुह्य वचन में दृग्भक्ति उसकी दात है।^२ सस्कारों का विनाश करके ही सहज दगा पाई जाती है जिसके लिए शास्त्रज्ञान का त्याग ही करना पड़ता है।^३

५ जन-दग्गन—बौद्धों से जनो म एक यह अंतर स्पष्ट है कि जन आत्मवादी होत हैं और आत्मा को नित्य मानते हैं। बौद्धों के समान बबल मन को निश्चल करना उनका साध्य नहीं है प्रत्युत आत्मज्ञान का साधन है। मन जब सासारिक विषयो का त्याग करता है तभी निमल होकर आत्मा को जान सकता है^४ और आत्मज्ञान की दगा म अहृतत्व और जिनतत्व म अद्वैत हो जाता है यही मोक्ष है।^५ इस मोक्ष के लिए लोक द्वारा अजित विषय सस्कार वाले गुणा का त्याग अपक्षित हाता है अथवा अद्वैतरूप मिलन संभव नहीं।^६

ऊपर दर्शन भद स रहस्य के याख्याभद का दिग्दग्गन मात्र हो सका है। दग्गनों की सख्या अनन्त कही जा सकती है कयो कि यो भी ससार भर

१ सहज निश्चल जेण किय, समरमे निज मण-राध ।

सिद्धो सा पुणु तवखण णउ जर-मरण ह माअ ॥

—दाहावास—कण्ठपा

२ चित्ताचित्त विपरिहृद्दु तिम अण्ठु जिम बालु ।

गुरु-वअण दिठ भत्ति करि होउअ सहुज उल्लानु ॥

—दोहावास—सरण्ठपा

३ आगम वेअ पुराणहि पण्डिय माण वहत्ति ।

पिक्क सिरीफले अलिय जिमि दाहेरीअ ममान्ति ॥—दोहावास—कण्ठपा

४ जेहउ मणु विसयहँ रमइ तिम जइ अप्पु मुणइ ।

जोउअ मणइ—हो जाइय हा! लुहु पित्तवाणु लहेइ ॥

—(जो इन्दु—परमप्यसार)

५ जो जिण सो हउ सो जि हउ एहउ भाउ निमणु ।

मोक्खहो कारणि जोइया उण्णु ण तत्तु ण मन्त ॥—(वही)

६ हउ सगुणी पिउ निग्गुणउ, णत्तिकखणु णीसग ।

एवकहि आभ वसन्तयहँ मिलिउ ण अगहि अग ॥

—रामनिह—पाण्ड पाट्ट

के दान नही गिनाये जा सकते और यह भी है कि एक ही दान व्यक्ति-व्यक्ति म पृथक् बौद्धिक सांचा लेकर पृथक् आकार म लता है जिससे एक ही रहस्य अनेक रूपो म दार्शनिक अभिव्यक्ति पाता है यहाँ हमें दो अतिवादा से बचना चाहिए —

१ पहला अतिवाद यह होगा कि हम सतो पर पढ हुए विविध प्रभावों का अभाव ठहराकर सभी को एक ही सीमा म बन्द कर लें और तार्किकविक्षेपण मे मय्य हो जाय जो दार्शनिक अध्ययन का विरोधी है ।

२ दूसरा अतिवाद तब होगा जब हम मान लेंगे कि विविध दानो म परस्पर काई साम्य नहीं । चरमतत्त्व बस्तुतः एक है जो विविध व्याख्यामें पाता है । अनुभूति और बुद्धि क धरातला का अन्तर दानभन्त कारण है । ' ज्ञान सत्ता का व्यापार है जब ज्ञाता की सत्ता म परिवर्तन घटित होता है तो ज्ञेयी का सवाणी परिवर्तन ज्ञान क स्वरूप और उसकी मात्रा म ला जाता है । ^१ जो हम जानते हैं वह इस पर भी निर्भर करता है कि नतिक प्राणी होन क नाते हम किम रूप म आत्मनिर्माण करना चाहते हैं । ^२ फिर भा वस्तुस्थिति विन्लपप्रधान न हाकर सत्यपमुखी होती ह ।^३

जीवन-दान मे रहस्यभावना का महत्त्व

धम ही जीवन-दान ह और जीवन-दान का आधार साक्षात्कृत दान रहस्य होता है । समय-समय पर काई-न-कोई दान जीवन-दान का आधार बनता ह । यह आधार दान क रहस्य पक्ष क अनुभूति पक्ष को गौण करके

1 Knowledge is a function of being When there is a change in the being of know there is a correser ponding change in the nature and amount of knowing

—The perennial philosophy Intro P 1

2. What we know depends also on what, as moral beings, we choose to make ourselves

(Ibid P 2)

3 All science is the reduction multiplicity to identities

—(Ibid P 11)

बौद्धिक अथवा विचारपक्ष की महत्त्व देता है। इसी प्रकार विविध धर्मों की प्रतिष्ठा हासो धीरे-धीरे-काल-भेद से विविध जीवन-रीतियों का प्रचलन हाता है। अपने समय में सुकरात ने यूनान को, ईसा ने समस्त योरप को, मुहम्मद ने अरब को मसूर ने बगदाद को जो धम ज्योति दी थी उसका रहस्य उनके प्रतिष्ठित दगानो म निहित है। महात्मा गांधी न ईश्वर सत्य हैं क स्थान पर सत्य ईश्वर है की जो प्रतिष्ठा की उसी क आधार पर आज की जीवन धारा अपनी गति खोज रही है।

मानव धमशास्त्र अद्वैत दगान पर प्रतिष्ठित जीवन-दगान है। मनु ने अपनी स्मृति के प्रथम अध्याय म दशन की प्रतिष्ठा करके^१ धम का चातुर्वर्ण्य म विभाजन किया है अतः भेद म भी स्वतः अभेद की प्रतिष्ठा हो गई है। राजपूत राणियों की छिन्न भिन्न अवस्था म जब वण व्यवस्था का आधार टूट रहा था तब शङ्कराचार्य पुनः अद्वैतवाद का आन्दोलन करके वर्णाश्रम धम का चिरन्तन आधार प्रदान किया। भक्तिकाव्य म शक्ति-दगान न जीवन-दगान का आधार दिया।

साक्षात्कार-दगान सिद्धान्त जीवन-दगान विविध सामाजिक शास्त्र-आचार-व्यवहार का विकास इसी परिगणित त्रम स होता है। रहस्य-साक्षात्कार की वस्तु रहता है और तब तक बुद्धि का विषय बन रहत हैं। आचार-व्यवहार धीरे-धीरे अभ्यास की वस्तु बनकर तक का भी सहारा नहीं चाहते और तक मूलभूत साक्षात्कार रहस्य स दूर चल जाते हैं। ऐसी दशा म दृष्टियों का राय हा जाता और समाज म जड़ता व्याप्त हो चलती है। तब पुनः दूसरे दगान एव तन्वीन व्यवहार की प्रतिष्ठा होती है। यही त्रम चलता रहता है।

कोई भी जीवन-दगान तब तक जीना है जब तक उसके तत्त्व न बवल-दानिक रूप म बुद्धिगम्य रहते हैं अपितु रहस्य-भावना के रूप म हृदयगम्य होते भी रहते हैं। समय-समय पर महात्मा सत-यागी मुनि और कवि-जीवन-क-रहस्य-पक्ष का उन्घाटन कर जीवन-दगान को सजीव बनाते रहते

१ तवत स्वयम्भूमगवान अभ्यक्तः व्यञ्जयस्मिन् ।

महाभूतादि व-ताजा प्रादुरासीत् तमोनु ॥—मनुस्मृति १६ ॥

योगावतीन्द्रियं ग्राह्यं सूक्ष्मोऽप्यक्तः सनातनः ।

सर्वभूतमया चिन्तय स एव स्वयमुद्भूतो ॥—बही १७

हैं। जन-जन में रहस्य भावना जन का काम जितनी सफलता से कवि करता है उस सरलता और साधकता से दूसरा नज़ा कर पाता। सन्तो और दार्शनिकों ने इसीलिए काव्य को माध्यम बनाया। भर्षि वात्मीकि को राम-चरित की काव्यमयी प्रतिष्ठा करनी पड़ी और अद्वैतियों को बौद्ध-धर्म का माध्यम ही कमी सटकी तो 'बुद्धचरित' और 'मोदरन' सामने आये। कवि कृषि भाव-सत्य की प्रतिष्ठा द्वारा चिरन्तन सत्य को प्रयत्न करना है अतः रहस्यसत्ता हृदयपटल पर अंकित हो जाती है जिससे अन्त एव व्यापक भावभूमि निर्मित होती है। वह विश्व में भर व्याप्ति चाहता हुआ उम्र सत्य का सत्य भरता है जो दण कालातीत है, उसकी कामना है।

'चेतना का सुन्दर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य,
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य असरो में अंकित हो नित्य।'

श्रुतियों की शक्ति का माध्यम वाक ने जब कहा कि 'अहं राष्ट्री मगमनी वसुनाम्' तो अपने कवि रूप और वाणी के काव्य रूप के महत्त्व की घोषणा कर दी, काव्य का लोकमगल इसी में है कि उसके द्वारा चिरन्तन सत्य हृदयगत होकर लोकचतना को विस्तार देता रहे। हम जितना ही सौन्दर्य के निःसीम रूप का चित्रण पढ़कर आनन्द हीन हात हैं उतना ही चित्त विस्तार फलित होता है।

साधारण जन वाणी नहीं हो सकते परन्तु योगि गम्य परम-सत्य को बुद्धिगम्य बनाते हुए हृदय में प्रतिष्ठित सभी कर सकते हैं। काव्य का यही उपयोग है। साधारण कवि रससृष्टि करके भाव विस्तारता देता है पर चिरन्तन अखण्ड एकरव की प्रतिष्ठा नहीं कर पाता परन्तु रहस्य कवि रस द्वारा विस्तार देता ही है सौन्दर्य के निःसीम रूप का उद्घाटन करके सत्य को सौन्दर्य में और उन दानों को शिव में परिणत कर देता है।

रहस्य और जिज्ञासा

जिज्ञासा सत्यज्ञान का सवस्य है अन्ति कारण है। प्रेम दर्शन की विरहासक्ति के मूल में जिज्ञासा है जो तटपत का रूप लेती है। प्रदत्त वित्तक चिन्तन मनन आदि अनक रूप इसी जिज्ञासा के हैं। 'प्रदत्त' उसका बौद्ध एव

वाचिक रूप है तो 'वितक भावमय रूप अतएव वितक का सञ्चारीभाव माना गया है। प्रश्न पूर्वपक्ष है जिसके आधार पर जो मिद्धान्त स्थिर होता है, उसी का उत्तर वृत्ते हैं, क्योंकि वह उत्तरवर्ती है, प्रश्न पूर्ववर्ती। यही से प्रश्नोत्तर के युगल की निष्पत्ति है। उत्तर अपने नाम को सायक नहीं कर सकता यदि उसके पूर्व म 'प्रश्न न हा और प्रश्न जिज्ञासा का सक्रिय रूप है जिसके ऊपर समस्त ज्ञान विज्ञान अवलम्बित हैं। ज्ञान उत्तर रूप है पर उसकी पूर्व' म्यिति प्रश्न अथवा जिज्ञासा म ह। दार्शनिक दृष्टि से देखें तो इच्छा प्रधान ज्ञान शक्ति ही जिज्ञासा है—ज्ञा शक्तिया का सगम है और प्रश्न म प्रिया भी जुड़ जाती है—निवेणी बन जाती है।

ऐतिहासिक दृष्टि स लेखा जाय तो ऋग्वेद का व देवता प्रश्नवाचक सवनाम के आधार पर खड़ा है—प्रश्न रूप है—कस्म देवाच हविषा विधयम। पूरा एक सूक्त इसी देवता की स्तुति म लग गया है। वह प्रजापति रूप है और धावापृथिवी का धारण करने वाला है वही हिरण्यगभ है जिसकी उत्पत्ति सब प्रथम हुई थी^१ वह सृष्टि आदि का कारण है। परमेश्वर का वही प्रथम रूप है। ऋग्वेद का नासदीय सूक्त निणयात्मक उत्तर देने की अपेक्षा रहस्य की जिज्ञासा क अधीन अधिक रखता है—अन्न म वह कह दता है कि इस विश्व का जो धाता है वह भी जानता है या नहीं—वक्ष्यदि वान वद।

उपनिषद् को ें तो केन उपनिषद् प्रश्नवाचक सवनाम को केन्द्र मानकर चलता है और उसका नायक यम तत्त्व जिज्ञासा का विषय बना रहता है। वह तो जिज्ञासा का ही कथा सूक्त लेकर रचा हुआ काव्य है। प्रश्न उपनिषद् भी उसी अवलम्ब पर खड़ा है 'वह म नचिकता की जिज्ञासा यमलोक की यात्रा का कारण है और उसी की सच्चाई पर उसका नायकत्व अवलम्बित है। तत्तिरीय म तत्त्व जिज्ञासा ही तत्त्वज्ञान म परिणत हुई दिखाई गई है। ब्रह्मसूत्र जा समस्त उपनिषद् का सार है अथातो ब्रह्मजिज्ञासा स चलता है जिसका अर्थ हुआ कि समस्त ब्रह्मविद्या ब्रह्म-जिज्ञासा है अथवा ज्ञान का रूप ही नहीं खड़ा होना।

१ हिरण्यगभ सभवनाम्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी धामृतेमा कस्म देवाय हविषा विधयम् ॥

बुद्ध भगवान् गिष्मों के प्रश्नों का ही उत्तर देते थे । सुकरात ने प्रश्नों द्वारा ही अपने सिद्धान्तों का प्रचार करके एथेंस के जन-जन में अध्यात्म और आस्था की आग प्रज्वलित कर ली थी । बाइबिल में बाइबल प्रश्न करके फिर आगे बढ़ते हैं । कुरान के मूल में सन्देश है । सबत्र प्राप्त एक आवरण है जिसे दूर करने की सक्रियता 'जिज्ञासा' के रूप में अवतीर्ण होती है । यही कौतूहल न होता तो ज्ञान विज्ञान ही नहीं जगत भी न होता ।

व्यावहारिक दृष्टि में देखें तो ज्ञान तथ्यों का भी जिज्ञासु की जिज्ञासा निवृत्ति के लिए कथन होता है । 'ज्ञान निष्क्रिय (Static) है जिसका गतिशील जगत् ससरणशील समार और 'याज्ञिक' विश्व में यदि महत्त्व है तो उसके विषय की इच्छा को लेकर, जब वह सक्रिय एवं सचेष्ट रूप (dynamic form) में आता । जिज्ञासा द्रव्य की नहीं गिष्म का वस्तु है और वही वाणी मात्र का कारण है ।

रहस्य के सादृश्य में जिज्ञासा का बहुत बड़ा हाथ है । रहस्य नाम रसायन-परक है जिसमें 'निष्' के नियम का भाव है । इस नियम द्वारा लक्ष्य-मान विधिरूप तत्त्वज्ञान रहस्यावस्था में जिज्ञासा रहता करता है । ज्ञानरूप लेकर तो यह रहस्य नहीं रहता है—उपनिषद् बन जाता है जिसमें उप-सर्ग की प्रमुखता है । 'रहस्य' लक्ष्य तो है पर वह जो मिला नहीं है जिसके लिए श्रम जारी है । मिल जान पर जिज्ञासा के साथ-साथ मन बुद्धि, वाणी सभी चुप हो बैठते हैं । 'मतो वाचा निवृत्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

अभिप्रेक्तिमात्र जिज्ञासापरक है । ज्ञान का अभिव्यक्ति वाचिक नहीं हाते प्रत्ययात्मक या अनुभूयात्मक होती है । ज्ञान की भाषा मौन है । बलवती वाणी का समस्त सारस्वत बभूव जिज्ञासा का अभिव्यक्ति है—सामूलक है अत रहस्य का अभिव्यक्ति का वही आधार है ।

रहस्य के सिद्ध-साध्य पक्ष

जिज्ञासा की सीमा में रहस्य की साध्य या जय दशा है और ज्ञान की भूमि में सिद्ध अवस्था ज्ञात दशा होती है । ये दोनों पक्ष ज्ञान प्रमाणावस्था द्रव्य की अपेक्षा में हैं निरपेक्ष रूप में 'रहस्य' वाणी का विषय नहीं ।

'साधारण-ज्ञान में सिद्ध रूप का आत्मा, द्रव्य सत्य आदि नाम गिष्म गये हैं और साध्यरूप का त्रिमा असत्त्व व्यापार आदि कहा गया है । धम्मूत

सिद्धरूप आगतिक, स्थित या (Static) है और साध्यरूप सगतिक सन्निय, स्पर्द रूप (dynamic) है।

सिद्ध अथवा पात रूप पाता के लिए रहस्य नहीं रहता उस जिनासु की अपेक्षा में ही रहस्य कहा जाता है और साध्य अथवा गम रूप ता जिनासु के लिए है ही।

बुछ शब्द—हरि राम ईश्वर ब्रह्म आदि—सिद्ध दशा के ही बाधक हैं क्योंकि वे निरपेक्ष अथ देते हैं हरि अथवा राम की सत्ता किसी की अपेक्षा में नहीं है। मृत से शब्द—जसे प्रजापतिक करुणामय, दीनबधु प्रभु प्रिय प्राण सवनाम आदि—साध्य दशा के हैं क्योंकि प्रभु सेवक की प्रिय प्रेमाश्रय की अपेक्षा में हाता है, अतः ऐसे शब्द सापेक्ष हैं। सवनाम की 'यापित' की लेकर साध्य कहा जाता है। सिद्धशब्द शास्त्रोपयोगी तथा साध्य शब्द काव्योपयोगी होते हैं। साध्य दशा वाले सभी शब्द व्यापार प्रधान होते हैं। सम्बन्धितक व्यापक होत हैं जा सीमा से असीम तक का अर्थ देते हैं।

चित्रकला के उदाहरण से इसे और भी समझा जा सकता है। गीता प्रस के धार्मिक चित्र सिद्ध रूप हैं जिनके प्रति एक स्थिर भाव सम्बद्ध है और रुढ़ होकर बुद्धि की जड़ वस्तु रह गया है जिसमें कला नहीं है परन्तु रवि वर्मा के वस ही चित्रों में कला है क्योंकि साधारण द्रष्टा के विविध भावों की तट्टि उनके द्वारा होती है यही साध्यता है। कला साध्यता में होती है।

सिनेमा में गाया हुआ गीत एक ही स्थूल वृत्ति को सिद्धरूप में व्यक्त करता है जबकि संगीत की रागमयी स्वरलहरी का कम्पन श्रोता की हृत्तन्त्री के साथ जुड़कर जिस आनन्द का गनि देता वह साध्य दशा है।

रहस्य सत्ता का लेकर धीरे देखें तो तत् या चरम सत्त्व की इद' के रूप में परिणति साध्य है जो जगत्प्रसार है—भले ही यह इद तद का एक चतुर्थांश ही है, परन्तु निष्प्रिय पडा हुआ तीन चौथाई सिद्ध ही है।^१ साध्य इद में स हाकर 'तद्' की आर गतिगोचर होता है जिससे गत्यात्मकता

अथवा साध्यता ही रहस्य का प्रमेय पक्ष उद्हरता है सिद्धरूप में वह अप्रमेय है मन-वाणी में परे है ।^१

साध्यपक्ष की काव्योपयोगिता

काव्य कवि-कर्म का नाम है अतः साध्य है । काव्य में वक्ष्य का स्वरूप साध्य ही रहता है । हिमालय की चाटियाँ बहुत ऊँची हैं वह हम छट्टी पाते हैं पर इसमें हिमालय का सिद्धरूप ही हाथ लगता है परन्तु महाकवि कालिदास कहते हैं 'मल्लिकापद्यन्त ही विचरण करन हुए मेघा की निचली चाटिया पर की छाया का संवन करन, वटि में उद्विग्न हाकर सिद्ध लाभ धाम वाली चाटिया पर चल जात हैं ।^२ यही साध्य रूपता लाभ के लिए वेग का महसूसोर्पा पुरण कहना पड़ता है और उपनिषदा का बिना परोक्ष चलन वाला कहना पड़ता है । गास्वामी जी उस इस प्रकार कहते हैं ।

पग विनु चलइ मुनइ विनु बाना । कर विनु करम करइ विधि नाना ॥
अनन रहित सबल-रस-भागा । विनु बानी बकता बड जोगी ॥

गाता में कहा गया है —

सवत पाग्निपाद तत सवताक्षि-गिरा-भुजम ।
सवत अतिमल्लाके सवमावत्य निष्ठति ॥

यही निगण की समुणरूपता है जो एक लकड़ी के टुकड़ों के अंतर की अग्नियों के समान एक होने हुए भी उपाधिकृत अन्तर रखते हैं —

एक-दारु गन देखिय एकू ।
पावक-सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥^३

रहस्यतत्त्व की सिद्धांतरूपता काव्य का विषय नहीं बन पाती क्योंकि सहृदय की उस अनुभूति में काव्य द्वारा नहीं पहुँचाया जा सकता । यहाँ ता साधारणीकरण चाहिए जा साध्य दत्ता में ही सम्भव है ।

१ यतो वाचो निवर्तते अग्राप्य मनसा सह ।

२ आमल्ल सचरता धनाना छायामथ सानुमता निषव्य ।

३ जित्वा बटिभिराश्रयन्त सानूनि मस्यात्तपर्वानि सिद्धा ॥

साध्यदशा का अधिष्ठान सिद्धदशा ही है पर उसे सिद्धि पाये बिना जान नहीं सकते । साधारण सहृदय सिद्धि पाया हुआ नहीं होता और हो भी ता काय का उसके लिए कोई उपयोग नहीं रहता—विक्षपदशा म वसा काय पढकर अपने समय का किंचित उपयोग भले कर ल । काय रचना भाव क धरातल की वस्तु है जहाँ साध्यावस्था का ही राज्य है ।

वस्तुस्थिति तो यह है कि आत्मा का स्वरूप स्थितिशील न होकर गत्यात्मक है, क्रियात्मक है साध्यरूप ही है ।^१ गवदगान तथा याकरणदगान की ऐसी मायता है—वहाँ द्रव्यरूप सिद्ध तत्त्व अण्ड रूप है जिस म भर हुए तरल द्रव के समान साध्य तत्त्व उस सिद्धरूप से अभिन्न ही रहता है । वस्तुतः द्रव्य वही है जो द्रव म बदला जा सके—गत्यथक द्रु, घातु से दानो ही की निष्पत्ति हुई है एक में यत प्रत्यय है तो दूसरे म अ प्रत्यय है । अतः द्रव्य और 'क्रिया तत्त्व व्यावहारिक भेद रख कर भी अभिन्न हैं । द्रव्य यदि शक्तिमान है तो क्रिया शक्ति है और दोनो मूलत एक हैं ।^२

श्री जयदेवसिंह की सम्मति म— इस स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है कि परमाथ सदा सिद्ध ही होता है वह कभी भी साध्य नहीं कहा जा सकता । क्योंकि ऐसा होन पर वह विषय हा जायगा । श्री शकराचार्य न अपने भाष्या म पद पद पर इस बात का स्पष्ट किया है ।^३

वस्तुतः साध्यपक्ष सिद्ध का विवर्तनात्र है अतः वह साध्यता भी गङ्गुर मत म अतात्त्विक ही रहेगी पर विवर्त्य तथा विवर्तमान तत्त्वो की अभिन्नता वहाँ भी माय है । काव्य की गति साध्य स सिद्ध की है क्योंकि कि काय एक व्यापार है 'विवर्तन' है । सिद्धदशा पाने पर तो काव्य पीछे रह जाता है । सच ता यह है कि सिद्धदशा म याग साधना भी यथ ठहरती है ।

रहस्य के विविध धरातल

जड चतन का भेद अत्यन्त सूक्ष्मता स समझा जान सगा है पर वस्तुतः दोना का व्यावहारिक अन्तर भी बुद्धिगम्य बनाना कठिन है । न्याय की

१ चतयमात्मा—गिवमून १ १ ॥ चतय चित्त्रया रूपम्—वार्तिक

२ अथ शक्त शक्तिमनो न भेदो द्रव्य-कमवत् ।

स्यापित्री द्रव्यता भिन्ना त्रियाना न च नास्ति सा ॥—गिवदृष्टि-६ १ ॥

३ शिनाक १९-१-६३ क पत्र स उद्धृत ॥

यथाथवादी दृष्टि आत्मा को अथ द्रव्य तथा पदार्थों से पृथक् गिन कर भी उस चतुर्थ स्वरूप नहीं कह पाता, सिधा इसके कि क्षणिक बुद्धिरूप गुण का वह आशय है और प्रतीतिधारा ही चेतना है अत आत्मा चेतनावान है। सब पूछा जाय ना 'याय का आत्मा अपन स्वरूप में जड़ है यद्यपि जड़ चेतना का विभाजन उहे माय नहीं। साध्य के अनुसार न केवल पञ्चभूतमय शरीर ही जड़ है अद्रिय और मन वित्त-बुद्धि अहंकार भी जड़ तत्त्व हैं बवल पुरुष चेतन है जिस के प्रभाव से समस्त जड़तत्त्व चेतनवत् भासित होते हैं। यह चेतनाभास स्थूल शरीर पयन्त समानरूप से विद्यमान है। बौद्धा के अनुसार स्थूल-सूक्ष्म सब कुछ विज्ञान या प्रतीति का धारामात्र है जड़ चेतन का तात्त्विक अन्त नहीं। यदि प्रतीति ही चेतना है तो स्थूल में स्थूल तत्त्व भी चतुर्थ है। वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही जगत का कारण है जो माया से बविध्य लता हुआ भी मूलत अद्रिय है और ब्रह्म स्वरूप ही है—सब सत्त्विव ब्रह्म'। शैवदर्शन ता जगत को न केवल चित का रूप ही मानता है अपित नित्य भी मानता है। चावाँक आदि (माक्स टाविन आदि भी तो) जड़वादा दर्शन चतुर्थ को जड़ता का विकास मात्र मानते हैं फलत दाना में अमेद है। भक्तिदर्शनों में पूजनया इतवाणी मध्व-दर्शन भी चतुर्थ का व्यापक मानता है अत जड़ में उसकी व्याप्ति स्वत सिद्ध है। जन-दर्शन जीव को 'यापक' न मान कर सकोच विकासशील मानता हुआ शरीर के बराबर का मानता है पर शरीर में उसकी व्याप्ति माय है।

चाहे जिस दृष्टि से समझा जाय स्थूल से सूक्ष्म की दिशा में प्रगति ही वास्तव विकास है। यह विकास चाहे टाविन का हो जिसमें जीवन विकास बुद्धि का उत्कृष्ट लेना चलना है, चाहे माक्स का हाँ जा विराध परिहार के लिए समाजवाणी ममत्व की शरण चाहता है, चाहे वेदान्त का आन्तरिक विकास हो अथवा 'गैवा का जो स्थूलाभिमान छोड़ने छात्र आत्मविस्तार करने का मायता देता है और चाहे वर्गों का ननि वाी विकास हा जो स्थूल का विरोध करत-करते विधि रूप सूक्ष्म तत्त्व तक पहुचने का श्रम प्रस्तुत करता है—सभी प्रकारों में चेतना का विकास का सकत शोभा जा सकता है बवल स्थूल प्रक्रियाओं तथा पारिभाषिक अवधारणाओं में अन्तर हागा।

इस प्रकार रहस्य तत्त्व स्थूल सूक्ष्म सबत्र व्याप्त है।

२ आध्यात्मिक विकास की शब्दा पात्रा में प्रतीति का ठहराव का अभ्यास कराया जाना है जिसमें वही तक का सिद्धि हस्तगत हाँ जाय और

फिर आगे बढ़ा जा मके । आगे चलन पर फिर ठहराव अपेक्षित है । इसी प्रकार चलते चलते चरम लक्ष्य की निम्न—पूण विकास—प्राप्त हो जाता है जहाँ सभी भेद विराध द्वन्द्व तिराहित हा आते हैं कयाकि द्वन्द्वों के उदगम पर पहुच कर उनकी समाप्ति फालत हा जाती है जसा कि गास्वामी जी ने कहा है—

उमा ज रामचरन रत बिगत काम मद श्रोष ।
निज प्रभुमय देखीह जगत, केहि सन करहि बिराध ॥

उस चरम दगा की अनुभूति इस रूप म बुद्धिगम्य हाकर हृदयगम हा सकती है ।

समरस थ जड या चेतन सु दर साकार बना था ।^१
चतनता एक बिलसती आनन्द अखण्ड घना था ॥

अथवा सरहपात्र का जसा कथन है— अद्वय प्रतीति रूपी तरुवर का त्रिभवन म बिस्तार हो गया कदगा फूल बन गई और (आनन्द का) फल धारण करता है अरु और कही उपकार नहीं ।^२

परन्तु विकास त्रम म अनक ठहराव हा सकत है । गुरु गिद्य को जहाँ ठहरा दे वह उस मत का पडाव या लोक हा जाता है । प्रस्तुत सन्ध म मनी मता का उल्लेख न सम्भव ही है और न अपेक्षित ही कछ प्रचलित मतों म चेतना थ स्तरों का तथा उसी त्रम स विकास का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

(क) इसलाम म चार बसेरे माय हैं—गरीबत तरीकत मारिफत और हुक्कान । य हा सालिक सूफी जायसी न गिनाये हैं—

कही तरीकत बिसती पीह । उधरित असरफ ओ जहंगीरु ॥
तहिक्के नाव चढ़ा ही घाई । देखि समजल जिउ न डराई ॥

१ कामायनी—आनन्द ॥

२ अथय बिसत गरुवरहो गड निहृयणि बित्थार ।

कदगा पृथ्वी फनु धरद नाहि परत उवार ॥ —गोहावास

जहिकै एसन खेवक भला । जाइ उतरि निरभ्र मा चला ॥
 राह हकीकत पर न चूकी । पठि मारकत मारि बुडूकी ॥
 दनि उठ तेइ मानिक माना । जाइ समाइ चोति मह जोनी ॥
 जहि कट उह अस नाव खडावा । कर यहि नीर खेइ तेइ आवा ॥

साँची गह सराअत, जहि बिसबास न होइ ।
 पाँव राखि तेहि सोढी निभरम पहुच माइ ॥^१

इमलाम म य उपलब्धि नहीं हैं । चौथी हकीकत भले ही सत्य की
 उपलब्धि दशा है । सम्भवत यही आठवाँ स्वर्ग है जिसे गदाद कहते हैं जहाँ
 अनाह की कुर्सी है । इसके पूर्व सात स्वर्ग भी मान्य हैं

सात विहिस्त विधन आतारा । भी आठइ गदाद सवारा ॥^२
 तथा खलिहँ आठौ पवारि दुआरा ।^३

'एक एक मदि र सात दुआरा ।^४

इसी दृष्टि में कहा गया है

चारि बसने मों च सत सा उतर पार ।^५

पार उतरन पर जो ग्या आठवें लोक में होती है वह इस प्रकार है

तहाँ न मीच न नीर दुख रह न देह मह राग ।

सदा अनन्द 'महम्मद सब मुख मान भोम ॥^६

अपन यहाँ भी सात लोक—भू भुव स्व मह जन, तप सत्यम—
 मान गये हैं । सत्य की तुलना हकीकत के साथ एकाग्रता के कारण की जा

१ अलरावट—२६ ।

२ आखिरी कलाम—५३ ।

३ वही—५६ ।

४ वही—५७ ।

५ पचासत—६० ।

६ आखिरी कलाम—९० ।

सकती है । ये लोक स्थूल स सूक्ष्म और सूक्ष्मतर होकर सत्यम में सूक्ष्मतम हो जाते हैं । विश्व रचना म ये जागतिक विभाग हो सकते हैं जिह साधना मे प्रगति के पडाव भी मान सकत हैं ।^१

हठयोग-पद्धति म छ चक्रा क भेदन का महत्त्व है । यह सिद्धात बहुत कुछ प्राण के नियमन के आधार पर कल्पित है । प्राणायाम की पद्धति स इसका विशेष सम्बन्ध है । शरीर में तीन प्रमुख नाडियाँ हैं जो नीचे से भ्रुकुटी क मध्यभाग तक जाती हैं और भ्रुकुटी उपर जिसे त्रिकुटी कहते है तीना सगम लेती हैं । इनम प्रथम ईडा अथवा सूयनाडी है जिसे गंगा भी कहते है द्वितीय नाडी पिंगला अथवा चन्द्रनाडी है जिस यमुना भी कहते हैं और तृतीय सुपुम्ना अथवा अग्निनाटी है जिस सरस्वती नदी की सना प्राप्त है ।^२ इडा दक्षिण और पिंगला वाम भाग म है । इहों का उपयोग श्वास प्रश्वास क्रम म एक एक पहर के लिए होता है पहर भर क बान् परिवर्तन हाता रहता है । भारतीय चिन्तन म याम और प्रहर प्राय इसी आधार पर बने है । याम का आयाम से सम्बन्ध है और उसी का प्राणायाम होता है । चूकि उसीस जावन के नियमन का काम होता है । अत याम नाम सायक भी है प्रहर प्रहार से सम्बद्ध है जीवन क त्रटित हान का अथ इसीसे निकलता है । प्रहर का ही एक अंग त्रुटि है । दण्ड गण जा घटी का वाचक है भी प्रहर का अथ समन्वय देता है ।^३ एक प्रहर म आठ दण्ड होते हैं और प्रत्येक दण्ड म साठ साठ त्रुटियाँ होती हैं—त्रुटि को पल अथवा निमय भी कहते है जिसका सम्बन्ध श्वास प्रश्वास स न होकर नत्रा के निभीलन तथा उमीलन से है । प्रत्येक त्रिया क्षणिक होती है और क्षण का भी सम्बन्ध क्षणु रिसायाम धातु से है जसा कि प्रहर का—

१ मैं समझता हू भू भुव स्व इत्यादि का स्वर्ग कहना ठीक नहीं होगा । ये व्यवहृतियाँ ब्रह्म की भिन्न स्तरों की अभिव्यक्ति हैं जिनमें भू सबसे स्थूल भुव कछ सूक्ष्म जिसम प्राण का प्राधाय है स्व जिसमें मन का प्राधाय है मह जिसम बुद्धि का प्राधाय है इत्यादि ।

—श्री जयदेव सिंह—व्यक्तिगत पत्र—दि १९-५-६३

२ इडा गति विषया पिंगला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती विद्यात प्रयाग सगमो मत ॥

—आचार्य हमचन्द्र कमारपाल चरित की टीका से

३ द्रयो क्षणमूययो = इडापिच्छला ।

—वही ८-१८

'क्षणोति = हिनस्ति, नाशयति इतिक्षण ।' क्षणापक लव गण भी काटन की अथवाली 'लू घातु से है । कालशक्ति की इस महिमा की ऐसी ध्याप्ति का लेकर गोस्वामी जी ने कहा है

'लवनिमेघ परिमाण युग, वरप कल्प सर चण्ड ।

भजसि न मन तेहि राम कहै, काल जामु को ण्ड ॥ —मानम

शरीर म अख कान, नाक, मुख वायु और उपस्थ व नवद्वार हैं अत यीता म उस नवद्वारा का नगर कहा गया है^१ और ब्रह्मरन्ध्र को गगन लयवा दगम द्वार कहा जाना है^२ वहां स समस्त शरीर का क्रियाकलाप संचालित होता है जसा कि जायसी ने कहा है

नी पीरी पर दसवें दुभारा । तेहि पर बाज राजघरियारा ॥

उक्त सीमो मे से सुषुम्ना नाडी का सिद्धि तथा निर्वाण का कारण माना है वह मध्यमा नाडी है^३ इस नाडी को छ भागो म विभक्त कर पट चक्र म विभक्त कर प्रत्येक चक्र-केन्द्र की कमण रूप म भावना को व्यवस्था की गई है । कही-कहा आठ चक्रा मे भी विभाजन है^४ छ सख्या ही अधिक प्रच लित है—मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत, विगुद्ध और आना । सातवाँ सहस्रार चक्र ही प्राप्य ज्ञान है । जायसी न सात समुद्रो का वणन बदाचित इसा आधार पर किया है—छ समुद्र भयानक हैं क्योंकि उनको पार करना कठिन है योग्य गुरु ही कणधार हा सकता है परंतु सातवाँ समुद्र तो प्राप्य स्थान का ही भाग है अत अत्यन्त मनोरम रूप म चित्रित हुआ है । देवी

१ धरो सो बठि गन धरियारी । पहर पहर सो आपनि बारा ॥

जबहि धरो पूजि तेहि मारा । धरो धरी धरियार पुकारा ॥

परा जो डांड जगत सब डांडा । का निश्चित माटी का भांडा ॥

—पद्मावत-सिंहलगीप-१८

२ नवद्वारे पुरे देही नव कुवन् न कारमन ।

३ गगन ब्रह्मरन्ध्र दसमगरमिति यावत ।—कृमारपाल चरित टीका ८-२४

४ मध्या सुषुम्नाभ्याता सिद्धिनिर्वाण कारणम —बही ८-१५ पर उद्धरण ।

५ अष्टाचक्रा नव-द्वारा देवाना पूरयोध्या ।

तस्या हिरण्यम काय स्वर्गो-योतिपावत ॥ —अथर्ववेद १०-२-३१

भागवत म सातो देवी लोका का वणन मनोरम है और यही भारतीय पद्धति है । सभी चक्रा मे विचित्र अनुभव होते हैं । वे सभी अनुभूतिया व धरातल हैं ।

१ मूलाधार चक्र—यह पायु और उपस्थ क मध्य स्थित चार दलवाला लाल कमल है । मध्य म भूमण्डल है । वहीं ब्रह्मा स्थित है जिनका प्रकाश प्रात काल के सूर्य के समान है । कर्णिका व बीच त्रिकाण है जिस त्रिपुर भी कहन हैं । इसके बीच म स्वयम्भूलिंग है । उसी स्वयम्भू पर सर्पाकार कुण्ड लिनी शक्ति साई हुई है । इस कुण्डलिनी क आगत होने स वहाँ की विचित्र अनुभूतिया होनी है । कुण्डलिनी स ऊपर परा शक्ति विद्यमान है । यह परा करोड़ों मूर्तों क प्रकाशवाली है । इस चक्र की शक्ति डाकिनी है ।^१

२ स्वाधिष्ठान चक्र—उपरस्थ (लिङ्गमूल) स्थान म आधार चक्र स ऊपर स्वाधिष्ठान है । यह छ दला का कमल है । उसके बीच म कमला वार जलमण्डल है जहा वरुण की स्थिति है । उसके मध्य म विष्णु की स्थिति है । यहाँ की शक्ति राविणी है जा मत्वाली है ।^२ (सभवत यही दुर्गासप्त गता की यागनिगा है अथवा निद्रात्वा है ।)

३ मणिपूर चक्र—नाभिमूल म दस दला वाला मणिपूर नाम का नाल कमल है । इसके बीच म त्रिकाण है जहाँ अग्निबीज है । वहाँ रुद्र प्ररुण रग म विद्यमान हैं । यहाँ लाकिनी शक्ति है ।^३

४ अना त चक्र—हृदय म द्वादश दल अरुण कमल है जिस अनाहत कहत हैं यही कल्पवक्ष है । मध्य म षटकोण है उसम वायुबीज का वास है । यहाँ अमय मुद्रा वा ईश्वर का निवास है । यहाँ की शक्ति पीतवर्णा है । यहाँ पर बाण नाम का शिवलिंग है । यहाँ पञ्चैचकर यागी मन्त्रप्टा हो जाता है ।^४

५ विगुद्ध चक्र—कण्ठ म पात्रगदल विगुद्ध नाम का कमल है । य अधनारी वर का निवास है । (यहा गण्गात्र का देवता है ।) इसा का

१ षटचक्रनिरूपणम—१-१४ ॥

२ वही १५-१९ ॥

३ वही २-२२ ॥

४ वही २३-२८ ॥

सदागिव कहत हैं। यहाँ की शक्ति शक्तिनी है। यहाँ जीव विद्युद होकर त्रिकालदर्शी हो जाता है।^१

६ आज्ञा चक्र—मोहा के ऊपर आज्ञा नाम का द्विदल श्वेत कमल है। यहाँ की शक्ति शक्तिनी है। यही मन का स्थान है। यहाँ त्रिवर्ग का वास है। यहाँ प्रणव का प्रकाश रहता है। यहाँ पर योगी का साऽह' का प्रकाश होती है। यह सबज्ञ हो जाता है।^२ इस चक्र का बड़ा महत्व है। यही से योगी 'पोडशाधार योग' में प्रवेश करता है—मूलाधार स्वाधिष्ठान मणिपूर अनाहत, विण्णु आना, विन्दु कलापद निबोधिका अथचन्द्र नाद नादान्त जमनी, विण्णुचक्र, ध्रुवमण्डल और शिव। अन्तिम शिव सहस्रार चक्र में है।^३

७ सहस्रार चक्र—आना चक्र के आगे तथा महसलकमल के नीचे कारणकारी अथवा 'आनन्दमयकोण' का स्थान है। वहाँ महानाद का वास है। शून्य में स्थित सहस्रार अथवा सहस्रदलकमल है। यह श्वेत कमल है। सहस्रारधु के ऊपरी भाग में विभिन्न विन्दु हैं जिसका एक विन्दु 'नित्यावन्त' और दूसरा 'निरञ्जन' है। यह कमल कवलामन्द रूप है। वही सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल है। चन्द्रमा का निर्वाणकलास सम्बन्ध है। वही त्रिकाण में परमगिव का वास है जो ब्रह्म रूप है। वही शक्ति की देवी है और विण्णु का विण्णु है। वही शिव-शक्ति के मिलन का वाद है। मिलन से असृष्ट सरता है। वहाँ करोडा विजलियों का प्रकाश होता है।^४ वही नाम अथवा सूर्यतत्व है जो क्रियारूप है विन्दु अथवा चन्द्रमा इच्छारूप है और निबोधिका अथवा अग्नि ज्ञानशक्ति है। यही स्थान है जो मन और वाणी से पर है।^५

८ नाद, विन्दु और बीज—ज्ञानरूप शिवतत्त्व बीज रूप है और क्रिया रूप शक्ति अक्षर है। इस ज्ञान का बीजाक्षर कहा जाता है। वही

१ पटचक्र निरूपणम् २९-३२ ॥

२ वही १५-३९ ॥

३ पटचक्र निरूपणम्—४४ की टीका ॥

४ तुलनोप—विजली मान्य पहन फिर, मुसक्याता सा श्रावण म।

हैं बीज बरत जाता था रस-सूद हमारे मन में ॥—आसू

५ पटचक्र निरूपणम्—४०-५० ॥

बीजाङ्कुर परागति है जो अह पत्र म कही जाती है^१—अ स इ तक के पचास अक्षरों का उसी का स्वरूप है वही परागति वणमयी है ।^२ गिव तथा शक्ति के पृथक पृथक श्वेत और शोण त्रि बिन्दु कल्पित हैं जो समस्त वाणीरूप तथा पदार्थ रूप हैं । इही दोनों का मिलित स्वरूप—जो त्रय अग्नि और सोम नामक बिन्दुओं का मिलन है—रवि बिन्दु कहलाता है । यही बिन्दु समस्त सृष्टि का कारणरूप है और निःसीम सौंदर्य रूप कमनीयता का आगार है अतः काम कहा जाता है । इसी काम की विमल शक्ति जो उनसे अभिन्न है कला या 'कामकला' कही जाती है । तीन विभक्तों के त्रिपुर का आकार लेने से यहीं महात्रिपुर सन्दरी शक्तियों म कही जाती है ।^३ इस देवी का मुख सूर्यबिन्दु स्तनयुगल सितगण बिन्दु है जिनमें शोणबिन्दु के स्फुरित होने पर नाद उत्पन्न होता है जो ब्रह्मरूप है । एक यही नाद है जिसमें नाद विषय का विभाग नहीं है अतः सदा एकरस यत्त एव प्राप्त यही नाद अनाहतनाद कहा जाता है ।^४ इसी नाद से समस्त जगत की नामरूपात्मक सृष्टि होती है—यही नाद ब्रह्म है । सहस्रार में ही इन सभी नाद बिन्दु और बीज की स्थिति मगनाद रूप परमगिव के नीचे है ।

१ कुण्डलिनी—सपुम्ना नाडी के मध्य में वज्रा और उनके भी मध्य में चित्रिणी नाडी है । ये ताना त्रय तमस रजस और सत्त्वगुण वाली हैं । यह चित्रिणी प्रणवमुक्त है । चित्रिणी मूलाधार के नीचे से सहस्रार के मध्य तक जाती है । चित्रिणी के बीच में कुण्डलिनी शक्ति का निवास है । योगी जब कुण्डलिनी में पहुँचता है तो गुह्यबाध का उन्मूलन होता है । चित्रिणी के मध्य में ही ब्रह्मनाडी है । यही कुण्डलिनी जब जगत्कर ऊर्ध्वमुखी हाता है तब सिद्धियों की प्राप्ति आरम्भ होती है । यह शक्ति सहस्रार में परमगिव से जा मिलती है ।^५

१ स्फुट गिव शक्ति-समागम बीजाङ्कुर रूपणी परागति ।

—कामकलाविलास ३ ।

२ वही—४८ तथा टीका ॥

वही—९ तथा टीका

४ एको नामात्मको वण सन्नाताविभागवान् ।

सौञ्जस्तमितम्पत्त्वान्नाहन इति श्रुत ॥—वही टीका ॥

५ स्वामी पूर्णानन्द परमहंस जी—तत्त्वचिन्तामणि स पटञ्जनिरूपणम् ॥

१० 'हस' और 'सोह'—साधारणतः हस सूय का कर्तृ है। यह वही सूय है जिसका बिन्दुरूप में उल्लेख सहस्रार के विवरण में आया है। यही 'हस' की स्थिति है जहां शुद्ध आत्मवाच होता है—अत्रैव आत्मा का भी हस कहा जाता है क्योंकि जीवात्मा अहंप्रधान होता है। 'अह + स = मैं ब्रह्म हूँ' का सूक्ष्म अभिमान ही इसका कारण है। सूर्यबिन्दु में ऊपर साह की स्थिति आता है—स + अह = ब्रह्म मैं हूँ यह दगा ही सच्ची लयावस्था अथवा मान्य दगा है। यही पूण अहता की स्थिति है।

यह विष्णु अथवा व्यष्टि में ब्रह्माण्ड अथवा समष्टि दत्तने की प्रक्रिया है जो तन्त्रो और आगमो में प्रचलित रत्ना है। व्यष्टि और समष्टि दाना का विवेचना कोणा के रूप में उपनिषदों में हुई है।

उक्त चक्रादि साधना आन्तरिक याग साधना है। स्वयं ब्राह्म जगत् से हटकर अतर्लोक में सिद्धि खोजनी होती है। कारण कि भागा का आद्यतन शरीर है और जगत् भाग्य है। भाग्य से हटने पर भाग साधनारूप इन्द्रिय निर्भरतापार हो जाना और चित्त की एकाग्रता मुल्भ हो जाती है। इसी प्रणाली का उपयोग बौद्ध-सिद्धा नाथपरियया कबीर आदि सन्तों और जायसी आदि मूकियों ने अपने काव्या में किया है—कुछ अन्तर से यही साधना प्रणाली भी हो सकती है।

परन्तु उपनिषदों में कोणा का वर्णन है जो पृथक् रहस्य के घरातला का विवरण देता है।

(ग) उपनिषदों में पाँच काणा गारा विष्णु और ब्रह्माण्ड दोनों का विभाजन है।^१ साधना में और रहस्यानुभूति में व्यष्टिगत काणा का ही देवता है।

क्ष— कारण शरीर अथवा सुषुप्ति दगा —

१ आनन्तमय काणा—अज्ञान अथवा माया से सबलित ब्रह्म समष्टि का आनन्तमय काणा है और वही व्यष्टियों का भी। इसी को कारण शरीर तथा सुषुप्ति दगा कहते हैं। व्यावहारिक रूप से पुरुष इस दशा में गम्भीर निद्रा लेता है जिससे जगत्कर कहता है 'सुप्त से सोया कुछ न जाना'।

१ दक्षिण—माण्डूक्य और तत्तिराय उपनिषद ॥

दस कथन में सुख प्रतीति आनन्दमय ज्ञान अथवा ब्रह्म का रूप है और न जानना अज्ञान अथवा माया है ।

अ— सूक्ष्म शरीर अथवा स्वप्न दशा —

२ विज्ञानमयकोण—निश्चयात्मिका बुद्धि तथा पाँच ज्ञानद्रव्यों के समुदित रूप से इस काण की रचना है ।

३ मनोमय कोण—सकलपात्मक मन तथा पाँचों ज्ञानद्रव्यों के मेल से मनामय काण का रचना है ।

४ प्राणमय काण—पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच प्राण प्राण जपान उदान व्यान और समान—इन षट् तत्त्वों के समुदाय का प्राणमय काण कहते हैं ।

ममण्डि और यण्डि दाना में यह स्वप्न अथवा सूक्ष्म शरीर है जो तीन कोणों से निर्मित है । (साक्ष्य में इस लिए शरीर कहते हैं जिसमें दस इन्द्रिय पाँच सूक्ष्ममूत और अन्तःकरण—अहंकार और मन—का योग रहता है)

अ— स्थूल शरीर अथवा जाग्रत दशा --

५ अन्नमय काण—यह पार्थिवीय है ।

इस समस्त प्रपञ्च में एक ही आनन्द तत्त्व अनुस्यूत है । उसी की सत्ता में प्रपञ्च की सत्ता है । उसी से उत्पन्न यह प्रपञ्च जीता है उसी में गति करता है और अन्ततः उसी में लीन हो जाता है ।^१ उस आनन्द कला की सबभ रक्षणमूर्ति हानी है और ये सभी उसक विविध धरातल हैं । जो तत्त्वज्ञ हाना है वह इस लोक से निवृत्त होकर अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय और आनन्दमय आत्मा का

१ आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् आनन्दात् हि एव सत्तु इमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दे प्रत्यभि साविर्गति इति । सया भागवती वारुणी विद्या परम ध्यामन प्रतिष्ठिता ।

उपमन्त्रमण करके इत लोका को भोगरूप में वामरूप लेकर संचरण करता हुआ आनन्दधन सामसंगीत गाता रहता है ।¹

यिथो साफी म शरीरा का विभाजन कुछ और प्रकार से है —

- (क) भौतिक शरीर—इसमें दो शरीर हैं (१) स्थूल शरीर और २ लिंग शरीर । लिंग शरीर ठीक स्थूल की प्रतिरूपिता होता है जो सूक्ष्म भूतो म बना जाता है ।²
- (ख) काममय शरीर—मह इच्छात्मक मनस्त्व का मण्डल है जो उक्त भौतिक शरीर का अनुस्यूत कर बाहर तक व्याप्त रहता है । इस दशा में भौतिक दशा का और विकास उपलब्ध होता है और इस दशा में पुरुष जागृत लगता है कि जगत और उसका समस्तिक जीवन अधिक उच्च हो गया है जसा कि पहले नहीं था । उच्चतर मानवता की सम्भावनायें उसमें समक्ष स्पष्ट होने लगती हैं ।³
- (ग) मानस शरीर—इसके दो भाग हैं (१) मनामय शरीर और (२) बुद्धिमय शरीर । बुद्धिमय = धात्मा + बुद्धि । यही प्रत्येक शरीर है—समस्त पूर्वोक्त कारण शरीर का समकल्प है । अतः (Aus l body) नाम दिया है ।⁴

इस विभाजन के लिए मिसेज एनीवसण्ट ने स्वानभूति को प्रमाण बतलाया है परन्तु यह भी स्वीकार किया है कि भूल हो सकती है जसा कि दार्शनिक प्रयोगों में होती है ।⁵

१ स च एववित । अस्मात्लोकान् प्रेत्य । एतमक्षमयमात्मानमुपसंश्रम्य । एत प्राणमयमात्मावमुपसंश्रम्य । एत मनामयमात्मानमुपसंश्रम्य । एत विज्ञानमयमात्मानमुपसंश्रम्य । एत मानसमयमात्मानमुपसंश्रम्य । मान लोकात् नो कामरूपा अनुसंचरन् एतत गामगायन्नास्त । —बौ २ १० ॥

२ २ ३ Man and his bodiss

३ We have reached a point at which much that was accepted as theory has become matter of first hand knowledge but just as the physicist may err so may the metaphysicist and as knowledge wisdom new lights are thrown on old facts—Thid P 12

आज के वैज्ञानिक युग में रहस्यात्मक अनुभूतियां तथा तत्सम्बन्धी घरातला की खोजें उड़ाई जा सकती हैं परन्तु रहस्यानुभूति भी एक अनभूत सत्य है जिस परीक्षण में सरा उतारा जा सकता है ठीक भौतिक तथा गणितीय तथ्या के समान ही। यद्यपि वह प्रमाण स्थूल तक से सम्भवतः प्रमाणित न किया जा सकेगा।¹ इस प्रकार हम स्पष्ट पाते हैं कि विविध घरातला में व्यक्त हुई असीम सत्ता अपने का और भी अव्यक्त करती है।² यही ता रहस्य है।

(घ) पातञ्जल यागशास्त्र के विभूतिपाद में विविध रहस्यमयी सिद्धियों का उल्लेख हुआ है जिनके घरातल भिन्न भिन्न बताए गए हैं। इन विलक्षण अलौकिक अनुभूतियों के कारणरूप में समय का महत्त्व दिया है—धारणाध्यान और सविकल्प समाधि के समुदित रूप का एकत्र समय कहते हैं।³ परन्तु योग की धरम उपलब्धि इन घरातलों पर नहीं मानी गई है। वहाँ कवलय को ही प्राप्य माना गया है। जिसका घरातल स्वरूप प्रतिष्ठा का

1 Science we read derives its ideas of what is valuable from its knowledge of the nature of things and any criteria not found by reference to the whole line of human evolution are dismissed as based on mysticism for the post or motives of personal advantage. But the mysticism (if the word must be used) can be shown to be as well based and as amply proved in experience by those empirical texts to which science by definition always appeals as the most matter of fact of physical and mathematical laws though proof may not be a rational one

—W B Honey—Science and the Creative Arts P 11

2 Some think Creation meant to show Him forth
I say it's meant to hide Him all it can
And that's what all the blessed evils for

—Browning quoted in the above P 46

३ दशवर्षाभ्यन्तरे धारणा । तत्र प्रत्यक्तानता ध्यानम् । तदेवापमानं
निर्यासं स्वरच्युत्सुमिदं समाधि तत्रमेव समयम् ।—यागसूत्र ३.१.४

घरातल है और वही परमपद है। वही कवय अवस्था है। जहा स फिर जागतिक उपलब्धि रमों में प्रत्यागमन नही होता ।^१

+

+

+

सांग तथा वेदान्त के रहस्य दर्शन म आपातत यह अंतर दीखता है कि योगसाधना सारय के अनेकत्वमूलक पुरुष की साधना है अत व्यष्टिपरक है जबकि वेदान्त समष्टि चत य की ही सत्य मानता है अत वाशमुक्त होते ही अद्वैत की उपलब्धि हा जाता है जहाँ मूय चन्द्र नक्षत्र तक का अनकता एकता म लान रहा कर्ती है ।^२

द्व-गवदगन ने र्म्यानुभूति का कुछ अ त्ग से विधान रखा है। अन घरातला का निर्धारण भी त्नु रूप ही मानना चाहिए। परमगिव ने ज्ञान इच्छा और क्रिया का सम्मिलित स्वकाय शक्ति चार अण्डो का निर्माण किया है—शक्ति माया, प्रवृत्ति और पृथ्वी। कोशनुस्य आच्छादक हान से तथा अपन भीतर पदायजाल छिपाये रहन म अण्ड' नाम की मायकता है।

१ पूण अहता के चमत्कार वाली आत्म प्रतीतिमयी शक्ति है जो अण्डा है। इसके अन्तगत सदाशिव ईश्वर और गुढ विद्या नाम क तीन दल अवान्तर रूप स विद्यमान हैं। यह अण्ड आगे के तीन अण्डा को अपन म लिए है।

२ तान मला क स्वभाववाला मोहात्मक बघनरूप माया नामक अण्ड है जिसम पाच कञ्चक—काल कला, नियति राग विद्या (अविद्या अथवा ज्ञान)—और पुरुष (पगु आयु अथवा जीव) य छ अव न्तर रूप स विद्यमान है। गप दा अण्ड इसके भीतर रहते ह। इसके स्वामी रुद्र हैं जा मायागवल निबन्ध है।

४ २

३ सत्त्व रजस तमस स्वभाववाली प्रकृति तासरा अण्ड है। य। पगु अर्थात जीवा की भाग्यरूपा है। सुत-दु ख मोह लान वाली है। इसक स्वामी

१ पुरुषायगूयाना गुणाना प्रतिप्रसव कवत्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्ति
—वटी ४ ३४ ॥

२ यत् गत्वा न निवतन्त तद् घाम परम मम ।—गाना ॥

३ न तत्र मूर्धो भाति न चत् नारक नमा विद्य तो भान्ति कतोऽयमग्नि ।

विष्णु हैं जा भू-प्रधान प्रकृतिगुण तत्त्व का रूप है। इसके अन्तगत २३ तत्त्व आते हैं—बुद्धि अहंकार मनस पञ्चानेन्द्रिय पाँच सूक्ष्मतत्त्व या विषय पञ्चमहाभूत। कुल प्रकृति समेत २४ तत्त्व साख्यवाल य ही हैं। गेय पृथ्वी अण्ड इसके भीतर विद्यमान है ही।

४ पृथ्वी अण्ड चौथा है जिसके अन्तगत मनुष्यादि सभी स्थावर जगम जीवजगत आ जाता है। यह स्थूल वञ्चकमयी हैं। इस अण्ड का स्वामी ब्रह्मा है।^१

इन अण्डों में ३६ तत्त्व चतुर्थ के विविध धरातल ह जो उत्तरोत्तर सकोच द्वारा प्रकटतर होते गये हैं। उपर्युक्त मलो के नाग स इन धरातला पर रहस्य चतुर्थ की अनुभूति हो सकती है। ये मल हैं—आणव मायीय और काम।

१ आणवमल—परमात्पर ब्रह्मरूप म जिस ज्ञान का अपनाता है वही आणवमल है। कारण कि इसी को अपनाकर शिवतत्त्व अणुरूप म प्रकट होता है। आत्म में अज्ञातम प्रतीति अज्ञातम म आत्मप्रतीति अर्थात् शरीर आत्मा को आत्मा मान बठना—दो प्रकार का आणव मल हुना है।^२ यही संकेत श्रीमती एनाथेसेण ने किया है— पश्चिम क पाठक का अपनी धारणा बल देनी चाहिए जिसमें अतीत वह इस बात का जम्यासा रहा है कि अपने की शरीराभिमानो मानता रहा है जबकि शरीर मनुष्य का निवास है। हम (पश्चात्त्य) अपने द्वारा पढ़ने हुए परिधानों के साथ अपने का अतिमान के अभ्यासो हो गये हैं हमें पूर्णत तर्कोचित लगता है जब हम साचत हैं कि हम शरीर हैं। यदि हम आग यान्ना है तो हम यह विचार (अभिमान) छोड़ देना चाहिए कि हम यही पढ़नावा हैं जिस सामयिक रूप स पढ़न खसा है और बँक देंगे और दूसरे नय धारण कर लेंगे।^३

२ मायीय मल—विविध वैश्वीय तत्त्वों की द्वैतमया प्रतीति ही मायीय मल है यदाकि माया भेद बुद्धि का है। यह प्रतीयमान तत्त्वों की परिच्छिन्न रूप म लानी है।

१ परमार्यसार—४ तथा बरदराज की टीका।

२ ज्ञान यथ—शिवमूत्र १२।

३ शिवमूत्रवार्तिक—११५-१६।

४ Man and His Bodies—p 2

३ काम मल—पाप तथा पुण्य के व्यापार काम मल हैं । इसमें वास्तव कर्तों का बोध नहीं रहता ।

वस्तुतः उक्त तीनों मल मायाशक्ति से ही निगमन हैं ।^१

+ + +

मशीचरूपा मृष्टि म लिप्त रहने के कारण 'मल' हैं उनकी प्रक्रिया 'मातृका' बही जाती है । 'मातृका ही ज्ञान का आधार है' जो ज्ञानबोधन है । अकारादि की वणमाला ही मातृका है जिसके गणों में अखिल पत्रय अनुविद्ध होकर भासित होते हैं ।^२ अतएव माण्डेय पुराण में अक्षर मात्राया की देवी रूप कहा है ।^३ 'गिव से लकर शक्ति' तक सभी पदार्थ अक्षरवेद्य हीत हैं और वे अक्षर रूढ़ प्रतीति दकर बधन म डाल दत हैं ।^४ अतः निरक्षर हीन तक ही अक्षरा म लिप्त हान का उपदेश है—अक्षरमम बुद्धिवाद दूर तक साय नहीं देता । सरहपात्र का इसी सभ में कथन है— समस्त जगत अक्षर-व्याप्त है, कोई निरक्षर नहीं । तब तक उन अक्षरों म लिप्त रहो जत्र तक निरक्षर न हो जाया ।^५

+ + +

इस बधन के समन का उपाय 'भरव' कहा जाता है ।^६ विमग नाम की 'सवित शक्ति अकस्मात् उच्छलती है और प्रतिभा स्फुरित हो उठती है,

१ स्वातन्त्र्य हानिबोधिस्य स्वातन्त्र्यस्याप्यबोधता । द्विधाणव मलमिदं स्वस्व रूपायहारन ।

मित्र वेद्य प्रयाज्जव मायीय जन्मभोगदम—वत्तमबोध काम तु ।

मायाशक्त्यव तन प्रथम । गि सू वा १-२१-२२ ।

२ ज्ञानार्थिष्ठान मातृका—गिवसूत्र १४ ।

३ न साऽस्ति प्रत्यया लाक य गणानुगमाद कृत ।

अनुविद्ध मिवज्ञान सव शब्देन भासते ।—वाक्यपदीय—ब्रह्मकाण्ड ।

४ सुधा स्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मायात्मिका स्थिता ।

—दुर्गासप्तसती अध्याय १

५ अक्यागति अकारान्त-पञ्चागण वण विग्रहा । शिवाग्नि शक्तिपयन्त तत्त्व प्राप्त प्रसूतिभू । करध शक्ति मध्यस्थता ब्रह्म पागावलम्बिका । पीठवयो महाधोरा मोहयन्ति मुट्टुमुहु—शिवसूत्रवातिक २६-२८ ।

६ अक्षर बाढ़ा समल जगु णाहि जिरक्षर काइ ।

ताव स अक्षर घालिया जाव गिरक्षर हाइ ।—दोहाकास ।

७ उद्यमो भरव—शिवसूत्र १५ ।

यही आन्तरिक स्पन्दन उद्यम है जो पूण अहता का वास्तव स्वरूप है । विभेद लाने वाले 'विकल्पा विविध कल्पनाओ को—जो सबत्र याप्त हैं—यह भरव क्वलित कर देता है अत नाम भी साध्य है ।^१

इस प्रकार उपयुक्त समस्त अण्डसमुदाय अथवा शक्तिचक्र का 'संघान'^२ अथवा क्रमचान हो जाता है फलत समस्त विश्व का सहार अथवा ल्य हा जाता है आत्म प्रकाश रूप अग्नि की सत्ता ही सहार है । ऐसी दशा में तीनों चतयावस्थाओ—जाग्रत स्वप्न और सुषुप्त—क रहते भी तुरीय दशा का व्यापक चमत्कार प्राप्त हो जाता है^३ फलत सभी धरातला पर एक ही आनन्दघन चतय रहस्य की अनुभूति होती है ।^४ योगी के योग म बहुत सी भूमिकाएँ—धरातरूप—होती हैं जिनम परमानन्द लाभ का विस्मय मिलता चलता है ।^५ शरीर दृश्य बन जाता है हृदय विश्व का आयतन हो जाता है । पशु भिन्न पशुपति की शक्ति का उदय हो जाता है आत्मनानरूप वितक की उत्पत्ति हाती है उसे समाधि का लोकानन्द मिलता है—जडता म लोक्य अथवा दृश्य और लोकयिता अथवा द्रष्टा के सिवा लोक, इन तीना का अचित प्रत्यय होता है जबकि योगी म सच्चिदानन्दमयी प्रतीति होती है वह यथेच्छ शरीर ले सकता है 'गुद्ध विद्या के उदय स शक्ति चक्र' अथवा अण्ड कटाह का स्वामी हो जाता है इस प्रकार पूण अहता का विमश अनुभवगम्य हो जाता है ।^६

ऊपर जा भरव नाम का उपाय दिखाया गया वही 'गाम्भव उपाय' कहा जाता है । गुरु द्वारा मातृकाचक्र का संबोध प्राप्त कर मकररहस्य' पान

१ योऽयं विमशरूपाया प्रसत्या स्वसविद । शटित्युच्छलनाकारप्रतिभा मज्जनात्मक । उद्यमोत्त परिस्पन् पूणहिभावनात्मक । स एव सव शक्तीना सामरस्यादपत । विश्वता भरितत्वेन विकल्पाना विभन्तिनाम । अलङ्कलनेनासीत्यवर्षायेव भरव —गिवसू वा १ ३३-३५ ।

२ शक्ति चत्रसंघान विश्व सहार —गिवसूत्र १ ६ ॥ तथा वातिक ३७-४२

३ जाग्रतस्वप्न सुषुप्त्यदे तर्वाभागसभव —गिवसूत्र १ ७ । तथा वातिक ४४-४५ ॥

४ त्रितयोक्ता वीरग —गिवसूत्र १ ११ । वातिक ५७-६१

५ विस्मया योगभूमिका —वही १ १२ । तथा वही ६३-६६

६ गिवसूत्र १ १३-२२ तथा वातिक ६७-११२

का दूसरा उपाय 'गाक्त उपाय' कहा जाता है। इस 'गाक्त उपाय' द्वारा भी विद्या अथवा अर्थनरूप ज्ञान का सहार हो जाता और विकल्प प्रतीतियों का दर्शन हो जाता है फलतः अणुशिवरूपता प्राप्त कर लेता है।^१

एक तीसरा आणव उपाय भी है। इस उपाय में चित्त अर्थात् बुद्धि अहंकार और मन की समष्टि रूप अन्तःकरण का 'आत्मा मानते हैं। इसमें नाडियाँ आदि का महत्त्व है प्राणायाम आदि प्रक्रियाएँ हैं।^२ हठयोग की प्रक्रिया इसी के अन्तर्गत है। बौद्धों की मनोवैज्ञानिक साधना भी इसी के अन्तर्गत है।

ऊपर शाम्भव, गाक्त और आणव तीन उपायों का निर्देश है जिनका सभी का अन्तिम लक्ष्य यही है कि जो जीव वस्तुतः परमशिवरूप है वह उसी रूप में पुनः पहुँच जाय इसी को 'प्रतिमालन' कहते हैं।^३ इसी दशा का मान्य कहते हैं—मान्य काइ पृथक् धाम नहीं न अर्थत्रय कही जाना है अज्ञान की शक्ति के खल जाने से आत्मशक्ति का उन्मूलन ही मोक्ष है। वह गंभीर रहते भी मुक्त है जिसके पुण्य पाप का भेद जाता रहा।^४ यह वही दशा है जिसमें प्रकाशरूप आनन्द हाँ सार है वही महामात्र है, वही शक्ति है जिसे पूरा अहता कहते हैं उसी में आवेग या ज्ञान में सृष्टिसंहारकारिणी सविद देवता की चन्द्रवरता मिल जाती है और वही शिवस्वलाभ है।^५

(च) अरविन्द—दर्शन

इस ज्ञानान्ते में जिस भारतीय मनाषी को जन्म देकर विश्व के समस्त मानवता का नवान आशाओं को पूरा सत्य का आधार देना चाहा, वह वे अरविन्द हैं। उनका अनुसार मनुष्य की सहज वृत्ति ही अमरत्व एवं श्रेष्ठ जीवन की आरंभ प्रेरित करती आ रही है परन्तु आज का मनुष्य उस मूल रहा है। वे आरविन्द के विकासवादी पर अपना मत दृष्ट स्पष्ट कर देते हैं कि जब हम

१ शिवसूत्र तथा वात्स्य—श्रीश्री उपाय ।

२ वही—श्रीश्री उपाय ।

३ भूय स्यात् प्रतिमालनम्—शिवसूत्र ३-४५

४ परमाद्यसार—६०-६१

५ प्रत्याभिवाहदयम्—०

जडत्व म जीवन के विकास की बात करते हैं ता स्पष्ट है कि हम जडता म चेतना के विकास की बात करना चाहत हैं। अतएव महाकवि प्रसाद ने स्पष्ट कहा है —

देव असफलताओ का ध्वस
प्रचुर उपकरण जुटा कर आज—
पहा है वन मानव सम्पत्ति
पूण हा जड का चेतन राज । —कामायनी

अरविन्द ने स्पष्ट कहा है—

हम भूत म जीवन विकास विषयक बात करते है जिसका तात्पर्य हुआ कि हम भूत म चतय का विकास खाजते हैं परन्तु विकास वह शब्द है जो केवल दृश्य जगत का वर्णन करता है उस स्पष्ट याख्या नही दे पाता। क्याकि इसमें कोई कारण नही दीखता कि भौतिक तत्त्वा म से जीवन क्यों विकास लेता है अथवा जीवन्त रूप म—स चेतना क्यों विकसित होती है जब तक कि हम यह वेदान्तीय समाधान न मान लें कि भूत पहल स ही जीवन और जीवन म चतय ओतप्रात है क्याकि तत्त्वत भूत आवत जीवन का एक रूप है और जीवन आवत चतय का एक रूप है।^१

प्रसाद जी विकास का यही दृष्टिकोण अपनात हैं —

यह संकत कर रही सत्ता
किसकी सरल विकासमयी ?
जीवन की लाञ्छना आज क्यों
इतनी प्रखर विलासमयी ? (कामायनी)

अरविन्द के अनुसार उद्भासित मनस जब विन्वात्मा का प्रत्यय पा लेता है ता जड-चेतन का भंग समाप्त हा जाता है —

हमन पहल ही विवचनता-महाचिति-म एक एसा सगमस्थान पा लिया है जहाँ भूत चतना के प्रति और चतना भूत के प्रति सत्य हा जाते हैं ? क्योंकि महाचिति म चेतना और जीवन मध्यवर्ती है साधारण आभिमानीक

प्रतीति में जैसे दोखते हैं, वैसे, विवाजक शक्तियों अथवा विधि निपथ (Positive negative) शक्तिया के बीच होने वाले वृत्रिम सघष के भेदकत्व नष्ट रह जाते, क्योंकि विधि निपथ शक्तियाँ तो एक ही अप्रमय सत्य के सिद्धांत हैं। विश्वचेतना को प्राप्न करता हुआ 'मनस' एक ऐसे प्रत्यय से 'प्राद्वसित' हो उठता है कि सत्सा एकत्व तथा विविधता का सत्य देख लेता है और तब उनके अयोऽयायी सिद्धांत पर अविचल हो जाता है विरोधो की अकस्मात् व्याख्या पा जाता है और दिव्य समरसता द्वारा वह व्याख्या विरोधमन की दशा प्राप्न करती है। उस दशा में मन सतुष्ट एव निभर हो जाता और तब जिस जीवेश्वरक्य की दिशा में हम गतिशील हैं उस आत्यन्तिक एकत्व का सद्दशावाहक बन जाता है।¹

कामायनी में भा देख सकत है —

प्रतिफलित हुई सब आँखें उस प्रम-ज्योति विमला से
सब पहचाने-स लगत, अपनी ही एक कला-से।
समरस थे जड या चेतन सुंदर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनंद अखण्ड घना था ॥'

अरविन्द की आध्यात्मिकता भौतिकता का त्याग अमाय घोषित करती है, क्योंकि उस दशा में दोनों एक दूसरे की सीमा बन जायें ता व्यापकता तथा निःसीमता भा निरपक्ष न रह जायें —

ब्रह्म अपन को विविध क्रमानुगत चतय रूपा में व्यक्त करता है। वे रूप केवल परस्पर सम्बन्धों में समन्वित प्रतीत होते हैं। यद्यपि 'बन्धु-सन्ध' में वे साय-साय रहते हैं या या कह कि काल का निरत्यता में वे सगी हाते हैं। जीवन, अपन विस्तार में अपनी मत्ता के निरत्य नूतन प्रान्तों की ओर उदय-शील रहता है। परन्तु यदि हम, एक से दूसरे प्रांत में पहुँचकर, उस शक्ति का त्याग कर देते हैं जो बड़ी तीव्र लालसा से नई उपलब्धि के निमित्त हमें दी हुई है यदि हम चेतना के जीवन में पहुँचकर, भौतिक जीवन का फेंक देते या लुप्त कर देते हैं जो आधारभूत है या यदि हम आध्यात्मिक उपलब्धियाँ का आवरण में मानस या भौतिक तथ्यों का वणन कर बैठते हैं तो सबव्याप्त

ईश्वर की पूणता सिद्ध नहीं कर पाते और न ही उसकी आत्माभिव्यक्ति की गतों को पूरा कर सकते हैं ।^१

देखिए —

‘हृदय म क्या है नहीं अधीर लालसा जीवन की निरोप
कर रहा वञ्चित कहीं न त्याग तुम्हें मन मे घर सुन्दर बेग ?
दुख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान ?
काम से शिक्षक रहे हो आज भविष्यत स बनकर अनजान ।

कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई-सी यत्न
विश्व का उमीलन अभिराम इसी म सब हात अनुरक्त ।
काम मञ्जूल स मण्डित श्रेय सग च्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर उसका तुम भूल बनाते हा असफल भव घाम ।^२

इसी के समयन म प्रसाद जी के रहस्यवाद विषयक निबन्ध का अग
उदघट किया जा सकता है —

‘अद्वैतमूला भक्ति रहस्यवादियों म निरन्तर प्राञ्जल हाती गई । इस
नागनिक सत्य का व्यावहारिक रूप देने म किसी विशेषआचार की आवश्यकता
न थी । ससार को मिथ्या मान कर असम्भव कल्पना के पीछे भटकना नहीं
पडना था । दुस्ववाद स उत्पन्न सत्यास और ससार से विराग की आवश्यकता
न थी । अद्वैतमूलक रहस्यवाद के व्यावहारिक रूप म विश्व को आत्मा का
अभिन्न अग वागमो म मान लिया गया था ।^३

त्रिचयनिटी भी इसका समयन करती है —

For now wesco throughaglass doubly but then face to
face now I know in part but then shall I know even as also
I am known^४

१ The life Divine P 45

२ कामायना श्रद्धासग

३ वाच्य और कला तथा अर्थ निबन्ध—पृ० ५७ ।

४ The Holy Bible P 418

अरविन्द महाचिन्ति म मृष्टिक्रम का 'अवरोह' और सृष्टि स महा चिन्ति की दिशा म पुनर्गति का 'आरोह' मानत हैं—'गवागम म प्रथम का 'सकाव' और द्वितीय का विकास कहा गया है विश्व तथा जीव-दानों-एक ही महाचिन्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं, सृष्टिक्रम म विविध धरातल उम सत्य के आवरण हैं जा सत्य स अभिन्न हैं और उसे गोपायित रखत हैं वे ही आवरण जीव के आरोह अथवा विकास म भूमिका का काम करते हैं । 'गवद'गन म जीवत्व स गिवत्व तक पहुचाने वाली मध्यमा 'गक्ति है जो 'सविन्द' कहलाना है—इसा क द्वारा मध्यवर्ती धरातला का विकास लाभ कर जीव चिन्तन'द की भूमि तक पहुचता है ।¹ अरविन्द का कथन है —

' विश्व और व्यक्ति—दोनों—विगिष्ट अभिव्यक्तिया हैं जिनम वह अप्र मय सत्ता अवतोलण होती है और जिहें पार करत हुए वह प्राप्त की जा सकतो है क्योंकि अय मध्यवर्ती समुदाय क्वल उहीं क पारम्परिक काय कलाप स उत्पन्न हाते हैं । यह परम सत्ता का अवराह अपनी प्रकृति म आत्मगापन है अवरोह के क्रमिक धरातल हैं जो गोपन के क्रमिक अवगुठन बनत हैं । अनिवायत स्व रूप का प्रकटीभाव आराह का रूप लेना है और अनिवायत ही आराह तथा प्रकटीभाव—दोनों—पुरोगतिक हैं । क्योंकि प्रत्येक क्रमिक धरातल जा लिम्प सत्ता क अवरोह म घनता है मनुष्य क लिए आराहण की नि श्रणी है प्रत्येक अवगुठन जा अज्ञात ईश्वर का तिराहित रखती है ईश्वर प्रमा एवम ईश्वरावपी के लिए उसक अनावरण का साधन बन कर आता है ।²

मुख-दु स्यात्मक द्वन्द्वों क प्रत्यय का कारण व्यष्टिमूलक अहम है जिसक लिए गिवसूत्र म जान बच कहा गया है । दु स्यात्मक प्रतीतियाँ लौकिक दष्टि स विधिरूप (positive) लगती हैं पर तत्त्वत सत्य क लिए व निषधात्मक (negative) हैं जा चतुर्थ क मूलरूप स पतन की परिचायिका हैं ।³ जब तक अहमूलक पुरुषार्थों का आग्रह रहगा व्यापकता का प्रलाति दूर रहगा —

१ मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभ । मध्यभूता सविन्दु भगवता ।

—प्रत्यभिज्ञा हृदय १७

1 The life Divine—p 53

2 Ibid—p 61

3 Ibid—p 65

और आनन्द के समारम्भ का जीवन है जो आनन्द भौतिक प्रकृति में अभिव्यक्ति लेता है ।¹

“यदि भौतिक प्रकृति में कोई विकास होता है और यदि वह विकास उस सत्ता का है जो चतुर्थ तथा जीवन—दो महत्त्व के शक्तियों और शक्ति सम्बन्धित है तो जीवन की यह पूर्णता विकास का लक्ष्य होनी ही चाहिए जिस की ओर हम सब अकाङ्क्षावान हैं और जो हमारे भावी की शीघ्र या विलम्ब की दशा में प्रकट होगी ।²

यही कामायनी के आनन्दसर्ग की शाम्भवी स्थिति है जहाँ जब चेतन समरस होते हैं, सौन्दर्य साकार हो जाता है चेतना एक होकर सक्रिय बन जाती है और अखण्ड एव घनीभूत आनन्द की उपलब्धि में मानवता पहुँच जाती है । अरविन्द का भी कथन है —

यह वह महत्तर सत्य उसका आनन्द एव सौन्दर्य है जिस के लिए वह (जीव) खोज कर रहा है सौन्दर्य जो सत्य है और सत्य जो सौन्दर्य है और इसीलिए यह आनन्द सुख है सौन्दर्य यह हम आत्मआनन्द देता है जब उसकी अपनी गम्भीरतर सत्य-रूपा का पटल खुल जाता है ।³

+

+

+

अरविन्द की तुलना में डार्विन के भौतिक विकासवाद को लें तो डार्विन के चतुर्थपक्ष को लेकर उदासीन दिखेगा परन्तु जिस भाषा में वह बोलता है उसे शुद्ध जड़ता की मानना असंगत लगता है —

जिस प्रकार कोपलें अपने विकास द्वारा नई कोपला को विस्तार देती हैं और वे नई कोपलें यदि समय होती हैं तो उपजाऊआम में फूट चलती और सभी ओर विविध प्रभु प्रसाक्षाओं को फला देती हैं उसी प्रकार आनुवंशिकता से जसा कि मेरा विश्वास है जीवन का एक महातर विकसित हो गया है जो अपनी प्रभु एव टूटी हुई शाखाओं से पृथ्वी की पत भर देता है और अपने

1 The life Divine P 1181

2 Ibid P 1185

3 Future Poetry P 22

सदाविस्तारशील एवं सुन्दर भावा प्रतारों में धरातल को आच्छादित करता रहता है ।¹¹

अन्तर स्पष्ट है कि डार्विन का चिन्तन बहुमुख है जब कि अरबि अन्तमुखी दृष्टि से विचार करते हैं जिसकी भावात्मक उपलब्धि पन्त में देखी जा सकती है —

'अतिमानव, सामूहिक मानव, ये युग के अतिवाद भाव स्थित, सहज राशि गुण सार ग्रहण कर मानवता विकसित होती नित। सतत दूर क तीर सुनहले जन मन को धरते आर्कापित सूर्य मन—सिद्धान्त बल कर स्थूल जगत में हाते मूर्त्तित ।'¹²

निष्कर्ष

दार्शनिकता का भीमिन्त—सक्षिप्त विवेचन लेकर देखा गया कि दर्शन और काव्य का लक्ष्य एक ही रहा है। साधना व्यक्तिक रही है पर दर्शन 'बुद्धि' और काव्य का भाव' सावजनीन रहे हैं। रहस्य काव्य में दर्शन और काव्य—बुद्धि और भाव—का मगम आध्यात्मिक घटना है जिसे अगले अध्यायों में काव्य के साथ देखने का प्रयास होगा।



1 The Making of Society P 306
(Darwin's Essay on Natural Selection)

२ रहस्यवच—नवनिर्माण, पृ० १४० ।

रहस्य-द्रष्टा के भेद साधकमात्र, साधककवि, कविमात्र

क्योंकि सत्य एक ही है—कहा उस जड़ या चतन—अतः उसे सुन्दर से पृथक या भिन्न न मानना चाहिए। सत्य और सुन्दर मिलकर गिव की प्रतिष्ठा करते हैं। गुण रूप में सत्यता सुन्दरता और शिवता की अभिव्यक्ति—गत मात्रा के आधार पर प्राबलारिक भेद ही कल्पित होता है। पर सत्य यदि आनन्द रूप प्रत्यय है तो सुन्दर हागा ही, अन्यथा 'आनन्द भी न हागा—आनन्द ही तो काव्य—कमनीय—सुन्दर है। यही कारण है ऋषियो को कवि कहा गया है और ग्रहा को आदि कवि। परम सत्य, परमानन्द अथवा परम सुन्दर अपने अक्षण्ड व्यापक रूप में अप्रमेय रहत हैं अतः रहस्य बने रहते हैं। ज्ञान-दर्शी ऋषि जब अवरण जाल को अति ज्ञान्त कर उस 'रहस्य' का दर्शन करता है तो वह सत्य ही नहीं इतना सुन्दर लगता है कि उसे भावसौ दय में डालकर काव्य बनाकर प्रस्तुत करता है। यह भी सम्भव है वह अनुभूति अनाभिव्यक्त रहजाय—क्योंकि आवश्यक नहीं कि शब्दाथ सम्पत्ति की सभी शरण लें—और तब 'रहस्य सत्य का साक्षात्कर्ता भीतर से कवि हाकर भी व्यवहार में कवि न कहा जायगा। ऐसा ही सम्भव है कि कोई दूसरे की रहस्यानुभूति से भावित हाकर उस निःसीम सत्य-सुन्दर को व्यक्त कर चल। अतः रहस्य-द्रष्टा के तीन भेद स्वतः सिद्ध हैं —

१ साधक मात्र—योग शास्त्र में रहस्यात्मक सिद्धि के पाँच कारण बतलाये गये हैं—जम औपधि मात्र तप और समाधि^१। किसी कारण-वश शरीर धारणमात्र से रहस्यमयी अणिमा आदि सिद्धियाँ मिल जाती हैं कृष्ण भगवान के लिए पुराणों में ऐसा ही वर्णित है। ताकत उपाय का पिछले अध्याय में उल्लेख हो चुका है। उसमें मात्रसिद्धि का संकेत है और शाकन आदि आगमो एव मात्रा में उनका विस्तृत वर्णन मिलता है। मात्र द्वारा सिद्धि पाई जा सकती है। तप द्वारा सिद्धि का प्रतिपादन शास्त्रो एव पराणो में है भृगुवल्ली के अनुसार भृगु का आनन्द ब्रह्म की सिद्धि तप द्वारा ही हुई थी। पाँचवाँ प्रकार समाधि है जिससे सिद्धि की प्रणाली का प्रतिपादन याग में किया गया है।

विविध धरातला पर प्राप्त की हुई पात्राएँ परिस्थितियों के अनुसार अनेक कारणों से आई रहस्यात्मक उपलब्धियाँ के साधक प्रायः मौन रह जाते हैं बुद्ध आदि ऐसे ही साधक थे । वे यदि कहते भी हैं तो अपनी असमर्थता ही प्रकट कर देते हैं— न उसे वाणी से गूँघ कह पाता है, न उम शिष्य समझता है, सहज अमृत रस ही तो समस्त जगत है किससे किस प्रकार कहा जाय ।^१ इस मौन का कारण साधक की अशक्त न होकर वाणी की सीमा है जसा कि कबीरकहते हैं

“जो दोस सो तो है नाहो, है मो कह्या न जाई ।

२ साधक कवि— कविमनीषी परिभू स्वयम् की श्रुति जिस कवि का वणन करती है वह स्वयं रहस्यमयता है अथवा द्रष्टा । कवि गण्ड की निष्पत्ति कु गण्डे धातु से हुई है—कवते इति कवि । परात्पर सत्ता ही महानाद सार शब्द है गण्ड ब्रह्म है, स्प दरूप हान स अखिल नाद जगत एव शब्द जगत का कारण है—कवि है । मनीषी शब्द ‘मनस+ईषा’ स मिलकर बना है ‘मानस मनन धर्मा है तो ईषा गति दशन अथ देने वाला गण्ड है—मनीषा मनन द्वारा प्राप्त व्याप्ति है और तत्त्व दान है—ईष-गति हिंसा दानपु’ धातु स ईषा बना है । मनसा ईषत इति शाल मस्य समनीषी व्युत्पत्ति है—मनीषी वही है जिसका शील मन से दशन करना अथवा व्याप्ति प्राप्त करना होता है । तभी तो उस परम सत्ता ने आदि कवि ब्रह्मा तक का वेदों का उपदेश दिया ।^२ व्याप्ति का कहना ही क्या है समस्त भूत उसका चौथाई हैं तीन चौथाई अमृत तत्त्व दूय रह जाता है ।^३ जहाँ एक परिभू शब्द की गति है वह ‘सवभिक व्याप्ति का ही वाचक है—परित = सवत भवति । ‘स्वयम् तो स्वयं भवति है स्वत एक होकर भी बहु होकर प्रजनन लाभ करता है । (एकोऽह बहुस्या प्रजायेय)

१ पाठत वाअइ गुरु कहइ, णउत बुज्जइ मोम ।

सहजामिय रमु सधलु जग कामु कर्ज्जइ कोस ॥

—(सरहपा दोह की —म—स)

२ तने ब्रह्म ह्नाय आदिकवय—भागवत १११ ।

३ ऋग्वे—परम सूत ॥

तत्त्वद्रष्टा भी उसी अनन्त के साथ एकाकार होकर कवि मनीषी परिभू स्वयम्भू हा जाता है। यही कारण है कि महर्षि अरविन्द ने 'Future Poetry' में वेदों को ही वास्तव काव्य कहा है और चरम उपग्रन्थि को ही कवि प्रतिपाद्य बतलाया है। एक किम्बदन्ती के अनुसार निराला जी से कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपन एक गीत की समीक्षा चाही तो निराला जी ने गायत्री मात्र पढ़ कर सुना दिया—उससे बड़ी कविता लिखी ही नहीं गई है। वस्तुतः सच्चे कवि और साधक में तात्त्विक अंतर नहीं प्रत्युत वही कवि है जो द्रष्टा है अतएव परम रहस्य का द्रष्टा अपन को पूणतया मौन रख नहीं पाता। वह कुछ न कुछ कहना अवश्य है और उसका सुना बना काय का तिलक बन जाता है।

३ कविमात्र—यथाय रहस्य द्रष्टा ही यथाय कवि है तो रहस्य का कविमात्र कसे सम्भाव्य है? जिस प्रकार अखिल अग जग रहस्य तत्त्व से पृथक् नहीं उसी प्रकार अभि यक्ति मात्र काय और अभियजनगील व्यक्तिमात्र कवि कहा जा सकता है। पर इमसे कवि तत्त्व नि सीम हा जाता है। वह नि सीम है ही—वह गति है गति नहीं। यक्ति स्वानुभूत सौन्दर्य को कवि नामक गति के प्रति समर्पित कर देता है—

मैं इन अपलक नयनों से दखा करता उस छवि को
प्रतिभा डाली भर लाता कर देना दान सुकवि का। —आसू

फिर भी साधक से पृथक् कविमात्र हो सकता है यह व्यावहारिक सत्य है। इसका दो कारण हैं एक तो साधना द्वारा द्रष्टा उसी परमानन्द में शाश्वत समावेश पा जाता है जबकि कविमात्र क्षणिक रहम्यानुभूति पाकर भावनानिहित करके व्यक्त कर देता है और उसका मानस की हलचल गान्त हा जाती है—

नसत की आगा किरण समान हृदय के कामउ कवि की कान्त—
कल्पना की लघु लहरी दिव्य कर रही मानस हलचल कान्त।
—कामादनी श्रद्धासग

स्पष्ट है कि नि सीम सौन्दर्य सत्य की क्षणिक अनुभूति कवि के हृदय सरोवर में भावतरंगा की आवेगमयी हलचल मचा देती है जिमसे वह अगात हो उठना और कल्पना की धारण में जाता है कल्पना उसे प्रशान्त बनाकर एक लघु तरंग में परिणत कर देती है जा मानसरावर की कान्त दगा का प्रतीक है और तब वही कवि को उस अनुभूति से छत्रकारा मिलता है। उस चमक थपका पलक का वरदान वह जगती को घांटे बिना भी जो नहीं सकता।

एकाकी रहना निःसीम कवि का भी नहीं आता तो उसी शक्ति के प्रतिनिधि सीमित कवि को कस सुनाए ?

जिस प्रकार सभी सरितायें पवत में अपना उदगम नहीं रखती और न सभी महासागर में लीन होती हैं उसी प्रकार कुछ कवि सीधे रहस्य-नगराज से अस्तित्व पाते और रहस्यसागर की हा गन्तव्य बनाते हैं, कुछ का लक्ष्य तो सागर होता है पर उदगम कोई अन्य रहस्य द्रष्टा (अथ नगी के ममान) होता है कुछ हैं जो पवत में निकलते हैं, पर बीच में किसी अन्य नदी में सगम ले लेते हैं—लोकानुभूति व कवि ऐसे ही हैं और कतिपय ऐसे भा होते हैं जो बीच में ही निकलकर बीच में ही लय पा लेते हैं रहस्य को वे क्या जानें, क्या माँगे क्या समझें ?

अनेक कवीरपि यथा न काव्यरचना की है जो कबीर काव्यधारा में पृथक् नहीं पर उन सभी कविधा की साधक तत्त्वद्रष्टा मान लेने का कोई कारण नहीं । प्रसाद निराला आदि को दिव्य चमक कभी मिला हा नहीं इसका कोई कारण नहीं । बचन की एक रचना लें

मिट्टा का तन, मिट्टी का मन क्षणभर जीवन मेरा परिचय ।

स्पष्ट है यह काव्य प्रवृत्ति दूसरी धारा की अवातर धारा लेकर नहीं बनी है, पर अन्ततः उसी रहस्य सागर में सगम पाने की विवर्ण है । वासना की अवसादमयी वृत्ति झील व समान इस लघु कुल्या को जन्म देती है, पर सच्चे रहस्य की ध्यजना की नदी के साथ जुड़कर वह अपना गतव्य बही बना लती है । उमर स्याम शोली सभी रहस्यवादी कवि हो गये क्योंकि इस धारा में सभी छोटी धाराओं को अपने प्रोढ़ में लकर बही पहुँचा दिया है । देव जसा शृ गारी कवि भी कभी बसा हा जाता है और विद्यापति जब कहते हैं

कत मधुजामिनि रमस गमाओल न बुझल कसन कैल
लाव-लाख जुग हिय हिय राखत तयो हिय जुडल न गल ।

तो किसी असीम शृ गारभावना में लक्ष्य लय दिखलाकर व धीरे शृ गारी व अपवाद से अगत लक्ष्य जाते हैं ।

रहस्यद्वान की जाह्नवी पाप का पृष्य करके दिव्यलोक दे देनी है ।

रहस्यकाव्य का अधिष्ठान तत्त्व

दिव्य चमक का मत्ता में ही जीवन सत्तावान् है परन्तु उस परम ध्योम की निबन्ध शक्ति व प्रति संपान नहीं है और परम चतना उसी स्वर्गीय

सगीत के निरंतर प्रपात एव प्रवाह का स्तत्र गान करती ह पर उसका अथ ग्राह्य नहीं बना पानी ।' —खलील जिब्रान¹

* * *

एक अमर स्रोत ह जहाँ से मरणधर्मा जीवन-नन् निकला ह और घूम कर वही जाता ह । जडतावादी विचारक त्रतस्वरूप समजनशील एक जडसत्ता मान कर उसे शाश्वत करार देता ह तो दूसरे हैं जो चेतना का सुन्दर इतिहास का अतिल मानवभावो का मत्य मान कर चाहते हैं कि वही विश्व क हृदय पटल पर दिव्य अक्षरो म नित्य अंकित हो² जाय । दोनो ही उदगम को शाश्वत मानते हैं दोनो उसे समरस स्वीकार्य करते हैं और द्विद्वात्मकता अथवा विपमता को सृष्टि के लिए आवश्यक बतलात हुए उस परम सत्ता की प्रकृति मानते हैं पर भूमा की स्वीकृति सबमाय ह

विपमता की पीडा से व्यस्त हा रहा स्पष्टित विश्व महान
यही मुख दुःख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान ।³

समरस शाश्वत सत्य क समस्त रूप स व्यस्त (विभक्त) विश्व की सृष्टि का कारण अनन्त का स्पन्दन ह, क्रिया है जा विपमता में परिणत हुई लगती ह पर वस्तुत समरसता की अनस्यूति नित्य ह । नित्य समरसता का अधिकार । किसी समसस्या के विपमखण्ड तभी तक विपम है जब तक व विलिप्त है सल्लिप्त रूप म लेते ही वह समता उनम भी व्याप्ति कर लेगी क्योंकि वही नित्य ह उसी का अधिकार ह ।

अतएव जीवन परिवर्तनशील होकर भी नित्य ह जरामरण तो इसलिए ह कि नित्य नूतनता का आनन्द किये है परिवर्तन में टेक । आनन्द तत्त्व की ही नित्य परिवर्तन म अभिव्यक्ति होती ह अतएव वेदांत न घोषणा की है

सभी तत्त्व स्वभाव से जरामरणरहित हैं ।

1 Life exists through the existence of the Heavenly system

उसी की मनसा से जरामरण चाहते हैं और स्वभाव से च्युत होते हैं।^१

परन्तु प्रकृत स्वभाव का छोड़ कर विकृत अभ्यास लेकर हम जरामरण का सत्य मानकर चल पड़ते हैं यही भय का कारण है।

‘ जिसका अब तक समय था सब जीवन में परिवर्तन अनन्त,
अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसका कड़ा अनन्त ।’^२

इस अभिग्राह्य के अखिल मण्डल को चीरकर शाश्वत जीवन तत्त्व या अमर चेतना के दगान होते हैं वही रहस्य काव्य का प्रेरक है।

* * *

कवि चाहे अनुभूति से बुद्धि में आये चाहे बुद्धि से अनुभूति में उतरने का विवश कर दिया जाय, जब दिनदिन इतस्ततस्तय जीवन के शिपत-बुझते कणों के लौकिक परिवर्तन को नगण्य बनाकर वह उसके अन्तरंग में घुसते घुसते सभा माया मण्डला को पार करके निःसीम में जा पहुँचता है तब सच्चा कवि बन जाता और—

‘चेतन का साक्षी मानव ही निर्विकार हसता-सा,
मांस के मधुर मिलन में गहर-गहर घसता सा ।’^३

वह जो कुछ कहता है वही अनन्त का सगात बन जाता है। उसी अवस्था में पहुँच कर तत्त्वद्रष्टा के वार सान्त्वना दत्त है

हे गल ! रात्रि-रात्रि तू प्रिय से दूर वियुक्त है इसका सन्ताप मत कर, धम रस ! सूर्य के उदय हाते हा देवालय-वालय में तू ही अपनी ध्वनि व्याप्त कर देगा ।^४

यही तत्त्वज्ञान वह प्रेरक है जो रहस्य काव्य का अधिष्ठान है।

१ जरामरण निमुक्ता सर्वे धर्मा स्वभावतः । जरामरणमिच्छन्त च्यवन्ते तमनापया ॥—मातृश्लेषकारिका—अलातशान्ति १० ।

२ कामायनी—इडा—पृ० १६६ ।

३ वही—आनन्दसंग ।

४ रणा दूर विछोहिया रहु रे सख मझुरि ।

देवलि-देवलि माह्वी, दसी ऊग मूरि ॥—बबीर-सामी—विरह की भंग—४४ (यह दाग गुड अथवा ७ भाषा का है ।)

दाशनिक तथा काव्यगत रहस्य में अन्तर

पहले ही देखा जा चुका है कि वेदों में विज्ञान दान का य का मिश्र रूप था जो आगे यथावत रह न सका । उपनिषदों में ही कला गीण होने लगी थी और अभिव्यक्ति के शून्य चित्रात्मकता में से होते हुए बौद्धिक पारिभाषिकता लेने लगे थे । पारिभाषिक शून्य स्थित अर्थ देने लगता है तो उसमें काव्योपयोगी गत्यात्मकता मरकर हो जाती है अतः कवि मूल चित्र भाषा का अपनाये हुए अलग हो गया । सूत्रों में आकर जब भाषा और भी बौद्धिक हो गई तो काव्य की सत्ता सर्वात्मना पृथक् हो गई । परन्तु अब भी काव्य, जो पुराणों में और रामायण—महाभारत में है लौकिक न बन पाया उसमें अलौकिकता की ही लोकवेद्य बनाने का काय हाथ में लिया । फिर भी दशन और काव्य दो हो गए । नाय सिद्ध सन्त सूफी आदि कवि अपने काव्यों में वही मूल रूप बनाए चल रहे हैं ।

‘ज्ञान और भाव दोनों की संभालने वाली भाषा काव्य की ही हो सकती है क्योंकि भाव ज्ञान का आधारभूत है और काव्य भाव की प्राथमिकता देता है परन्तु स्पष्टबोधगम्यता के लिए भाषा उत्तरोत्तर पारिभाषिक रुढ़ि अपनाए जाने की विवश हुई । इधर काव्य निमुक्त होकर रहस्यधारा में प्रच्युत हो चला । कविता के लिए यह इतिहास चाहे—पोपक मान लिया जाय पर भावप्रधान जन-जीवन के लिए इस प्रवृत्ति को अभिगाप मानना चाहिए ।

जब ऋषि कहता है

ह जलदेवियो ! तुम्हारा जो मङ्गलमय रस है उसे हम बाँट दो जस पुत्रभाविनी मातायें अपना हृदयरस प्रदान करती हैं । तो कवि का ‘भाव उतना ही सजग है जितना कि विज्ञान और दान । फलतः प्राकृतिक शक्ति में अनुस्यूत अमीम रहस्य के प्रति भाव उमड़ आता है । अनएव अरविन्द के अनुसार काव्य वह समीतात्मक भाषा है जो अचानक द्रष्टा के हृदय और गत्य के मुद्गर धाम में उद्भूत होती है ।^१ अरविन्द का ही दानिक और काव्यात्मक शायों की तुलना करें तो स्पष्ट हो जायगा कि काव्य की भाषा भावमय, प्रतीकारत्मक चित्रमयी एवं गीतात्मक हो उठी है । उदाहरणार्थ —

' भव में

सहन करता हू नर्तक और उन सुनसान आवासी बधा को,
और उपवना को जो उस प्रिया ने रिक्त है । म जाऊगा
और उमे खोजूगा अनश्वर तरु दल के नीचे
अथवा प्रपत्ता के पीछे एकान्त म ।^१

पुरुषरस के इस प्रलाप म श्रित्तन विरह का जो संकेत मिलना है वही तो काव्यात्मा है रहस्य है । इसकी व्याख्या दार्शनिक होगी पर प्रतीति भावात्मक । इस रहस्यमयता से गिरकर कविता पूण अलौकिक न रह सकी यही अभिप्राय है जिस जीवन के साथ कविता भी ढी रहो है ।

*

*

*

यहाँ स्पष्ट ही दान और काव्य के रहस्य म औपाधिक अन्तर दीख जाता है । दान को प्रक्रिया बौद्धिक है और काव्य की भावात्मक । भाव क धरातल असंख्य होंगे । अतः प्रतीतियाँ विविध होंगी, पर रसास्वाद का एक साधारण धरातल उन प्रतीतियों की एकरूपता प्रदान करेगा परन्तु दशनजन्य बाध बढो मतकता म परिभाषाया गार गहात कराया जाता है फिर भी यदि बुद्धि म कुछ का कुछ बठा तो असंख्य व्याख्यायें सत्य का तिराहित कर देंगी । बुद्धि जहाँ अध्यवसाय स हटी कि विकल्प में पडी । काव्य का रहस्यभाव की परिधि का कन्द्र बनकर आनन्द का प्रकाश देता ही रहता ह । बुद्धि प्रश्न करने का विवग करक छान देगी

गनि का सुदूर वह नील शोक

जिसकी छाया-सा फला ह ऊपर-नीचे यह गगन शोक
उसके भी पर सुना जाता कोई प्रकार का महा आक
वह एक किरन अपनी देकर मरी स्वतन्त्रता म सहाय
बया बन सकता ह नियति जाल स भुक्तिमान का ुकर उपाय ।^१

—कामायनी—इटा

परतु काव्य का भाव एक आस्था देगा

हे विराट ! हे विश्वदेव ! ! तुम कुछ हो, ऐसा होता भान ।

—बही—आगा

*

*

*

अध्यात्मबोध और काव्यवृत्त रहस्यबोध एक तुला पर रखे जा सकते हैं । दोनों में अन्तःकरण की अराण्डवृत्ति काम करती है । इतना अन्तर तो रहेगा कि शुद्ध काव्य की वृत्ति विभावादि अनेक तत्त्वों के मण्डल में रहकर भाव या राग से उपरक्त होगी जबकि अध्यात्मबोध शुद्ध एवं नीराग रूप लेगा । अध्यात्मबोध भी काव्य में भावावत हो जाता है और योगी को भी पूज्य लय नहीं दे पाता उसकी तो प्रणाली ही पृथक् है । अध्यात्म रहस्य सदा प्रतीयमान रह सकता है पर काव्य की प्रतीति क्षणावस्थायी झलक भर है, तत्त्वद्रष्टा कवि भी उस क्षणिक प्रत्ययगीलता से मुक्त नहीं कर सकता ।

रहस्यात्मक सौन्दर्य-बोध

देदीप्यमान तप' अथवा परम प्रकाश के श्रुत और सत्य दो पक्ष हैं । 'सत्य उसका सत्ता-पक्ष है तो श्रुत गतिपक्ष । यही गत्यात्मा तपस पूज्य सौन्दर्य है जो अपनी दीप्ति से जगत को दीप्त करता है । ऋषियों ने प्रकृति के नानारूपों में उसी एक सौन्दर्य को विकीर्ण देखा था अतएव अग्नि सोम बरुण मरुत ही नहीं मण्डूक' तक देवत्व की महिमा से मण्डित हो उठे थे । यही दृष्टि है जो समस्त से व्यस्त में आकर समस्त को देखती है । यही दृष्टि व्यस्त को देख कर भी उसके वस्तुत्व पर विश्वास नहीं कर पाती—नेति' की महिमा यहाँ भी गाय रहती है ।

परन्तु प्रत्येक सौन्दर्य दृष्टि इस प्रकार असीम को आलम्बन नहीं बना पाती । हम प्रायः एक वृक्ष के एक पल्लव को सुपमा से आश्रान्त होकर उसी में तमय हो जाते और समूच वृक्ष को सोचते हैं । विहारी के लिए ता—

“चोना-चौकनि चौध में परति चौधि-सी दीठि ।

इस दृष्टि को व्यस्त में ही रत पाते हैं अतः इसे जीव की अणतम सीमा, कणात्मक दृष्टि की देन मान लेना ही सगत है।

*

*

*

उक्त दो सीमायें महत्तम और अणतम हैं जिनके मध्य में अनन्त दृष्टियाँ होंगी जो मध्य सौन्दर्य को दृश्य बनाकर द्रष्टा को चकित कर देती हैं। हम सब चके हैं कि रहस्यानुभूति के विविध घरातल हैं जो द्रष्टा की पात्रता के अनुसार निर्धारित होते हैं। प्रसाद जी क्षितिगत मुपुमा को मानव भोग्य मानते थे, अतः उस स्वतंत्र सौन्दर्य का न तो स्नात मानते थे और न ही उस पर आश्चर्य प्रकट कर पाते थे। परन्तु समस्त क्षित्यण्ड को प्रभावित करने वाले प्रवृत्त्यण्ड को वे विस्मय से देखते थे और उसमें रहस्य की मुपमा पाँकती हुई पाते थे—उपा रजनी प्रहमण्डल आदि एतः हैं। उदाहरणार्थ—

उदबुद्ध क्षितिज की श्याम छटा
इस उदित गुन की छाया में
उपा सा कीन रहस्य लिये
सोती किरणों की काया में।

(कामायनी—पृ० ६७)

परन्तु प्रसाद का कवि इस दुनय में अदरय रहने वाले कारणभूत सौन्दर्य को पकड़ने के लिए आकुल है

मैं देख रहा हूँ जो कुछ भी
वह सब क्या छाया उलझन है ?
सुन्दरता के इस परदे में
क्या अन्य घरा कोई धन है ?

(वही—पृ० ६६)

दूसरे गल्पों में कहा जा सकता है कि कवि व्यष्टियों में उलझ कर भा उस सत्य नहीं मान पाता और उनमें ध्याप्त रहस्यात्मक सौन्दर्य की चमक से चकचकी जाता है। यही कारण है कि मानवीय के सौन्दर्य का भी वे अन्त पहुँचाना चावित करने को विवश हैं

ज्योत्स्ना निम्नर ! ठहरती ही नहीं यह आँख
तुम्हें कुछ पहचानने की खो गई सी साँख।

—वही वाचन